

मा १५८

see d on
24/5/81

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण



वर्ष . ६५

संख्या २

(परिशिष्ट १)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०४८, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१७, मई १९९१ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-श्रीहनुमत्प्रोक्त मन्त्रराजात्मक रामस्तव	४०९	१२-स्मृति-वाङ्मयमें योग-निरूपण (डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम्.ए०, पी-एच्. डी०)	४३१
२-कल्याण (शिव)	४१०	१३-योगसे योगातक (श्रीरामचन्द्रजी शर्मा, शास्त्री) ...	४३४
३-योगका स्वरूप (एक जीवसेवक महात्मा)	४११	१४-योगाभ्यास और यौगिक चिकित्सा (श्रीमहेशकुमारजी मिश्र)	४३५
४-पिपीलिकामार्ग और विहङ्गममार्ग (गङ्गोत्तरीनिवासी परम-हंस परिव्राजकाचार्य दण्डिस्वामी श्रीशिवानन्दजी संरक्षती)	४१६	१५-स्वर-विज्ञान और बिना औषध रोगनाशके उपाय (परिव्राजकाचार्य परमहंस श्रीमत्स्वामी श्रीनिगमानन्दजी संरक्षती)	४३७
५-प्रेमयोग [कविता] (गो० श्रीहितपरमानन्दजी)	४१७	१६-भगवत्प्राप्तिमें ध्यानयोगकी महिमा	४४०
६-जपयोग (बालयोगी श्रीबालस्वामीजी महाराज (श्रीन०रा० निगुडकर) के अनुभवयुक्त विचार)	४१८	१७-परमयोगगुरु श्रीमारुति	४४३
७-ध्यानयोग क्या है ? (आचार्य डॉ० श्रीशुकरलजी उपाध्याय)	४२१	१८-योगिराट् महर्षि याज्ञवल्क्य	४४४
८-श्रीहनुमत्प्रोक्त मन्त्रराजात्मक रामस्तवका भावार्थ	४२३	१९-योगिराज राजर्षि भर्तृहरि	४४५
९-गीतामें योग और भोग (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	४२४	२०-ब्रह्मज्ञानी राजर्षि जनक	४४६
१०-सूर्यविज्ञान (महामहोपाध्याय आचार्य पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्.ए०)	४२५	२१-सांख्य-योगके वक्ता भगवान् कपिलदेव	४४७
११-योगकी एक सफल उपलब्धि—परकाया-प्रवेश (आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्.ए०, साहित्यरत्न) ..	४२८	२२-सिद्धयोगा शबरी	४४८

चित्र-सूची

१-ब्रजराजकी गोवर्धन-लीला

(इकरंगा)

आवरण-पृष्ठ

२-योगिराज श्रीहनुमान्जीद्वारा भगवान् श्रीरामका संस्तवन

(रंगीन)

मुख-पृष्ठ

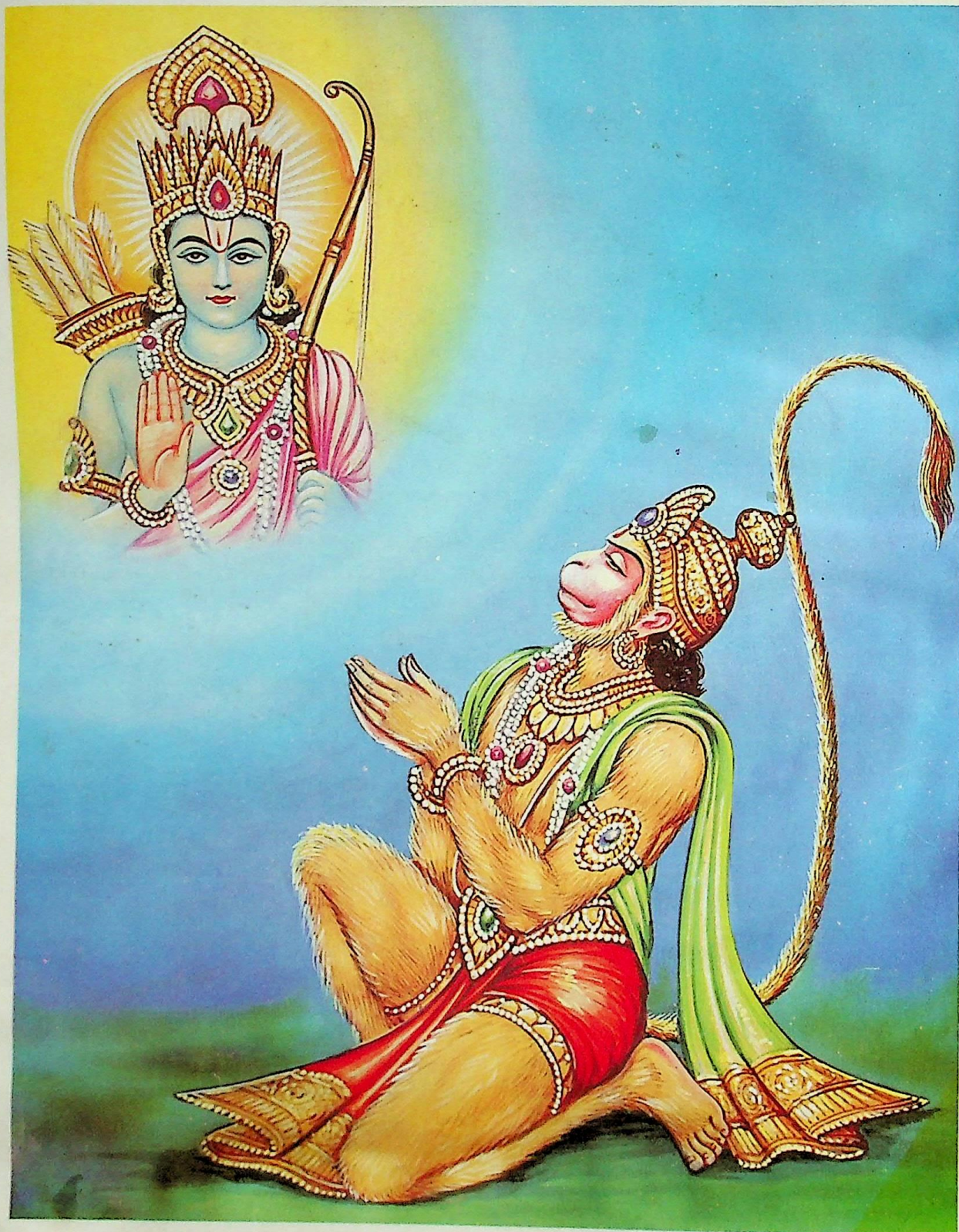
प्रत्येक	साधारण	} जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥ } जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥ } जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥	{ कल्याणका वार्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ५५.०० रु० विदेशमें ५ पौंड अथवा ८ डालर
अङ्किका	मूल्य		
भारतमें	२.५० रु०		
विदेशमें	२० पेंस		

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित



योगिराज श्रीहनुमान्जीद्वारा भगवान् श्रीरामका संस्तवन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्धवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥

वर्ष ६५ } गोरखपुर, सौर वैशाख, वि०सं० २०४८, श्रीकृष्ण-सं० ५२१७, मई १९९१ ई० { संख्या २
पूर्ण संख्या ७७१

श्रीहनुमत्प्रोक्त मन्त्रराजात्मक रामस्तव

तिरश्चामपि चारातिसमवायं समेयुषाम् । यतः सुग्रीवमुख्यानां यस्तमुग्रं नमाम्यहम् ॥
सकृदेव प्रपन्नाय विशिष्टमैरयच्छ्रियम् । विभीषणायाब्धितटे यस्तं वीरं नमाम्यहम् ॥
यो महान् पूजितो व्यापी महान् वै करुणामृतम् । श्रुतं येन जटायोश्च महाविष्णुं नमाम्यहम् ॥
तेजसाप्यायिता यस्य ज्वलन्ति ज्वलनादयः । प्रकाशते स्वतन्त्रो यस्तं ज्वलन्तं नमाम्यहम् ॥
सर्वतोमुखता येन लीलया दर्शिता रणे । रक्षसां खरमुख्यानां तं वन्दे सर्वतोमुखम् ॥
नृभावं यः प्रपन्नानां हिनस्ति च तथा नृषु । सिंहः सत्त्वेष्विवोत्कृष्टस्तं नृसिंहं नमाम्यहम् ॥
यस्माद्विभ्यति वातार्कज्वलनेन्द्राः समृत्यवः । भियं तनोति पापानां भीषणं तं नमाम्यहम् ॥
परस्य योग्यतापेक्षारहितो नित्यमङ्गलम् । ददात्येव निजौदार्याद्यस्तं भद्रं नमाम्यहम् ॥
यो मृत्युं निजदासानां नाशयत्यखिलेष्टदः । तत्रोदाहृतये व्याधो मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥
यत्पादपदमप्रणतो भवत्युत्तमपूरुषः । तमजं सर्वदेवानां नमनीयं नमाम्यहम् ॥
अहंभावं समुत्सृज्य दास्येनैव रघूत्तमम् । भजेऽहं प्रत्यहं रामं ससीतं सहलक्ष्मणम् ॥
नित्यं श्रीरामभक्तस्य किंकरा यमकिंकराः । शिवमय्यो दिशस्तस्य सिद्धयस्तस्य दासिकाः ॥
इमं हनूमता प्रोक्तं मन्त्रराजात्मकं स्तवम् । पठत्यनुदिनं यस्तु स रामे भक्तिमान् भवेत् ॥

[भावार्थ पृष्ठ ४२३ पर देखे]

कल्याण

योगका यथार्थ अर्थ है 'श्रीभगवान्‌के साथ युक्त हो जाना', 'भगवान्‌को यथार्थमें पा लेना' या भगवत्प्रेमरूप अथवा भगवद्रूप हो जाना। यही जीवका परम ध्येय है। जबतक जीव इस स्थितिमें नहीं पहुँच जायगा, तबतक न उसको तृप्ति होगी, न शान्ति मिलेगी, न भटकना बंद होगा और न किसी पूर्ण नित्य, सनातन, आनन्दरूप तत्त्वके संयोगकी अतृप्त और प्रच्छन्न आकाङ्क्षाकी ही पूर्ति होगी। इस पूर्णके संयोगका नाम ही योग है। अथवा इसको पानेके लिये जो जीवका विविधरूप सावधान प्रयत्न है उसका नाम भी योग है। यह पूर्णकी प्राप्ति का प्रयत्न जिस क्रियाके साथ जुड़ता है, वही योग बन जाता है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, सांख्ययोग, राजयोग, मन्त्रयोग, हठयोग आदि इसीके नाम हैं, परंतु यह याद रखो कि जो कर्म, ज्ञान, भक्ति, ध्यान, सांख्य, मन्त्र, लय या हठकी क्रिया भगवन्मुखी नहीं है वह योग नहीं है कुयोग है और उससे प्रायः पतन ही होता है।

अतएव इन सब योगोंमेंसे, जिसमें आपकी रुचि हो, उसीको भगवत्प्राप्तिका मार्ग मानकर ग्रहण करना चाहिये। ये सब योग भिन्न-भिन्न भी हैं और इनका परस्पर मेल भी है। यों तो किसी भी योगमें ऐसी बात नहीं है कि वह दूसरेकी बिल्कुल अपेक्षा न रखता हो, परंतु प्रधानता-गौणताका अन्तर तो है ही। कुछ योगोंका सुन्दर समन्वय भी है। गीतामें ऐसा ही समन्वय प्राप्त होता है। केवल शरीर, केवल वाणी, केवल मन, केवल बुद्धि आदिसे जैसे कोई काम ठीक नहीं होता, इसी प्रकार योगोंमें भी समझना चाहिये।

हाँ, इतना अवश्य ध्यान रहे कि जिन योगोंमें मनका संयोग होनेपर भी (जैसे नेति, धौति आदि षट्कर्म, बन्ध, मुद्रा, प्राणायाम, कुण्डलिनी-जागरण आदि) शारीरिक क्रियाओंकी प्रधानता है, अथवा मन्त्र-तन्त्रादिसे सम्बन्धित देवविशेषकी पूजा-पद्धति मुख्य है, उनमें अज्ञान, अविधि, अव्यवस्था, अनियमितता होनेसे लाभ तो होता ही नहीं, उलटी हानि होती है। भौति-भौतिके कष्टसाध्य या असाध्य शारीरिक और मानसिक रोग हो जाते हैं। अतएव ऐसे योगोंकी अपेक्षा भक्तियोग, निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि उत्तम हैं, ये अपेक्षाकृत बहुत ही निरापद हैं। इनमें भी अनुभवशून्य

लोगोंकी देखा-देखी अविधि करनेसे हानि हो सकती है, अतएव शान्त, शीलवान्, शास्त्रज्ञ एवं अनुभवी गुरुकी— पथप्रदर्शककी सभी योगोंमें अत्यन्त आवश्यकता है। परंतु अध्यात्ममार्गका पथप्रदर्शक या गुरु सहज ही नहीं मिलता। भगवत्कृपासे ही अनेकजन्मार्जित पुण्य-पुञ्जके कारण अनुभवी और दयालु सद्गुरु मिलते हैं। हर किसीको गुरु बना लेनेमें तो बहुत ही खतरा है। आजकल देशमें गुरु बननेवालोंकी भरमार है। यथार्थ वस्तुस्थिति यह है कि आज साधुवेशमें फिरनेवाले लोगोंमें व्यसनी, कामी, क्रोधी, लम्पट, दुराचारी मनुष्य या पेशेवर, धन कमानेवाले लोग बहुत हो गये हैं। लोगोंको ठगनेके लिये बड़ी-बड़ी बातें बनानेवाले और चालाकीसे भोले-भाले लोगोंको झूठी सिद्धिका चमत्कार दिखानेवाले, अथवा कहीं एकाध मामूली सिद्धिके द्वारा लोगोंमें अपनेको परमसिद्ध साबित करनेवाले लोगोंकी आज कमी नहीं है। आज हठयोगमें अपनेको सिद्ध माननेवाले लोग रोगी, ज्ञानयोगमें सिद्ध माननेवाले कामी, क्रोधी या मानी, लययोगमें सिद्ध माननेवाले शरीरकी नाड़ियोंसे और आभ्यन्तरिक अवयवोंसे अनभिज्ञ, भक्तियोगमें अपनेको परमभक्त बतानेवाले विषयी और मन्त्रयोगमें अपनेको सिद्ध—प्रसिद्ध करनेवाले सर्वथा असफल पाये जाते हैं और इसपर भी अपनी मान-प्रतिष्ठा जमाने या कायम रखनेके लिये सिद्धाईका दावा करते देखे जाते हैं। ऐसे लोगोंसे साधकको सदा सावधान हो रहना चाहिये।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि आज सच्चे सिद्धिप्राप्त पुरुष हैं ही नहीं। हैं, अवश्य हैं, परंतु लोगोंके सामने अपनेको सिद्ध प्रसिद्ध करके जान-बूझकर आसक्ति और स्वार्थवश कामिनी-काञ्चन या मान-सम्मान चाहनेवाले लोगोंमें तो कदाचित् ही कोई सच्चे सिद्ध होंगे। सिद्धिप्राप्त पुरुषोंसे तात्पर्य पातञ्जलोक्त अष्टसिद्धियाँ या अन्यान्य प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त पुरुषोंसे नहीं है, प्रत्युत किसी भी मार्गसे शेष सीमातक पहुँचकर जो भगवान्‌को प्राप्त कर चुके हैं उन्हीं महापुरुषोंसे अभिप्राय है। ऐसे महापुरुष यौगिक सिद्धियोंकी और चमत्कारोंकी कोई परवा नहीं करते। वास्तवमें भगवान्‌को प्राप्त कर लेना ही सच्ची सिद्धि है। —'शिव'

योगका स्वरूप

(एक जीवसेवक महात्मा)

योग क्या है ?

योग शब्द 'युज' धातुसे करण और भाववाच्यमें घञ् प्रत्यय लगानेसे बनता है। 'युज' धातुका अर्थ है समाधि। अतएव 'योग' शब्दका वास्तविक अर्थ समझनेके लिये 'समाधि' शब्दका भी वास्तविक अर्थ समझनेकी थोड़ी चेष्टा करनी होगी। 'समाधि' शब्दका अर्थ है सम्यक् प्रकारसे भगवान्के साथ युक्त हो जाना, मिल जाना। जीवका कामना, वासना, आसक्ति, संस्कार आदि सब प्रकारकी आगन्तुक मलिनताको दूरकर, स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर, मुख्य भावसे भगवान्में मिल जाना। गौणभावसे भगवान्से युक्त होनेका सहज सुन्दर स्वाभाविक उपाय भी 'समाधि' शब्दके अन्तर्गत है। 'योग' शब्दके अंदर भी हम इन्हीं दो तत्त्वोंको निहित देखते हैं। 'योग' शब्दका अर्थ है जीव और ब्रह्मका पूर्णरूपसे मिलन अर्थात् विजातीय, स्वजातीय एवं स्वगतभेदसे रहित होकर जीव और ब्रह्मका एकत्व प्राप्त कर लेना—भगवान्के साथ, भगवद्विधानके साथ सम्पूर्ण रूपमें ताल-तालपर मिल जाना, एक हो जाना, जिस अवस्थामें भगवान्के अस्तित्वके सिवा हमारा पृथक् अस्तित्व ही नहीं रह जायगा, भगवान्की इच्छा पूरी करनेके अतिरिक्त हमारे जीवनमें दूसरा कोई काम ही नहीं रह जायगा। एक शब्दमें—जिस अवस्थामें भगवान्की सत्ता, चैतन्य और आनन्द अपने-आप हमारी वाणी, भाव और कार्यके द्वारा पूर्णरूपसे प्रस्फुटित होकर प्रकट हो जाय, उसीका नाम 'योग' है। इसी अवस्थाको लक्ष्य करके मनुष्यको भगवान्का अवतार कहा जाता है—

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'।

—इत्यादि वाक्य इसी भावको प्रकट करते हैं। वास्तविक योगकी अवस्थामें क्या हो जाता है, यह समझना भी कठिन है। इसी बातको लक्ष्य करके कहा गया है—

योगवियोगै रहितो योगी

भोगविभोगै रहितो भोगी।

एवं चरति हि मन्दं मन्दं

मनसा कल्पितसहजानन्दम् ॥

इसी योगकी अवस्थाकी ओर लक्ष्य करके महर्षि अष्टावक्रने अपने प्रिय शिष्य राजर्षि जनकसे एक दिन कहा था कि वास्तविक योगी संसारमें दुर्लभ है—

बुभुक्षुरिह संसारे मुमुक्षुरपि दृश्यते।

भोगमोक्षनिराकाङ्क्षी विरलो हि महाशयः ॥

इस योगकी अवस्था समस्त द्वन्द्वभावोंके ऊपर गुणातीत, उदासीन अवस्थामें स्थित है। मिलन या योगके दो प्रकार देखे जाते हैं। एक मिलन है अपने अस्तित्वको पूर्णतया खो देना, जैसा कि शंकरके विशुद्धाद्वैतवादका मत है, दूसरा मिलन है अपने पृथक् स्वरूपको, स्वगत-भावको कुछ अंशमें बचा रखना—जैसा कि रामानुजके विशिष्टाद्वैतवादका मत है। यहाँपर 'योग' शब्द 'युज' धातुसे भाववाच्यमें घञ् प्रत्यय लगानेसे सिद्ध हुआ है, जैसे 'ज्ञायते यत् तत् ज्ञानम्।' यहाँ ज्ञान भगवान्के चित्स्वरूपके सिवा और कुछ भी नहीं। इसके बाद जिसके द्वारा यह मिलन साधित होता है, मिलनके उस सहज-सुन्दर स्वाभाविक उपायको भी 'योग' शब्दके द्वारा निर्देश किया जाता है। यहाँपर चित्तकी वृत्तिका निरोध करना, चित्तको वृत्तिशून्य करना और चित्तवृत्तिनिरोधके लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब 'योग' शब्दके अन्तर्गत है। जैसे 'ज्ञायते अनेन इति ज्ञानम्', इस प्रकार करणवाच्यसे 'ज्ञान' शब्द सिद्ध करके गीताकारने 'अमानित्वमदम्भित्वम्' आदि ज्ञानके साधनभूत अङ्गोंको भी 'ज्ञान' शब्दके अन्तर्गत माना है, इसी तरह 'युज्यते अनेन इति' करणवाच्यसाधित 'योग' शब्दके द्वारा आसन, प्राणायाम आदि अष्टाङ्गयोगप्रणालीको भी योगके, भगवान्के साथ युक्त होनेके सहायकरूपमें 'योग' शब्दके अन्तर्गत रखा गया है। अतएव 'योग' शब्दका मुख्य अर्थ है भाववाच्यमें साधित भगवत्-मिलन और गौण अर्थ है करणवाच्यमें साधित भगवान्के साथ मिलनेके लिये आवश्यक समस्त साधनप्रणाली। किसी भी कार्य-साधनकी सहज-सुन्दर और स्वाभाविक प्रणाली 'योग' शब्दके अन्तर्गत मानी जा सकती है। सभी कार्य योग हैं, सभी काम मनोयोगके ऊपर निर्भर करते हैं। चित्तकी एकाग्रताके बिना कोई भी काम

सुन्दरताके साथ सम्पन्न नहीं हो सकता।

योगके विभिन्न अर्थ

अब हम देखें कि वर्तमान समयमें 'योग' शब्द किन-किन अर्थोंमें व्यवहृत होता है—

(१) जीवात्मा-परमात्माका सम्पूर्ण रूपमें मिलन—
अद्वैतानुभूति-योग।

(२) देहात्मबुद्धि त्यागकर आत्मभावापन्न होना योग है—जैसे 'योगेनान्ते तनुत्यजाम्।'

(३) योगका अर्थ है—योगदर्शन, पतञ्जलिका योग-दर्शन नामक ग्रन्थ, जिसका उद्देश्य है जीवात्मा-परमात्माका सम्पूर्ण मिलन कराकर कैवल्य-प्राप्तिमें सहायक होना।

(४) पातञ्जलमतानुसार चित्तवृत्तिका निरोध करके स्वरूप-प्रतिष्ठ होना योग है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः,' 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।'

(५) सांख्यमतानुसार पुरुष-प्रकृतिका पृथक्त्व स्थापितकर, दोनोंका वियोग करके पुरुषका स्वरूपमें स्थित होना योग है, 'पुं प्रकृत्योर्वियोगेऽपि योग इत्यभिधीयते।'

(६) सुख-दुःख, पाप-पुण्य, शत्रु-मित्र, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे अतीत होकर समत्व प्राप्त करना भी योग नामसे अभिहित होता है, जैसा कि गीतामें कहा गया है — 'समत्वं योग उच्यते।'

भक्त प्रह्लादने—

'सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य।'

—इस 'आराधन' शब्दके द्वारा भी योगकी वास्तविक अवस्थाको सूचित किया है।

(७) कर्म बन्धन न कर सकें, इस प्रकारसे कर्मके प्रति उदासीन-भावको धारणकर मुक्तावस्थाको प्राप्त करनेके उपायको भी योग कहते हैं। जैसे गीतामें कहा है—'योगः कर्मसु कौशलम्।'

(८) दो विभिन्न पदार्थोंका अपने-अपने स्वरूपको खोकर एक अद्भुत पदार्थमें परिणत होनेका नाम भी योग (Chemical combination) है। जैसे हाइड्रोजन (अम्लजान) और ऑक्सिजन (यवक्षारजान) मिलकर जलके रूपमें परिणत हो जाते हैं।

इसी प्रकार अपने-अपने पार्थक्यको बनाये रखकर दो

द्रव्योंका मिलन भी योग है। जैसे काठका काठके साथ, लोहेका लोहेके साथ मिलना भी योग है।

'उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्॥'

(अभिज्ञान शाकुं ७।२२)

तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः

सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि।

(रघुवंश ३।२६)

कथायोगेन बुध्यते। (हितोपदेश)

(९) योगफल—(Consequence result)

रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।

(अभिज्ञान शाकुं २।१४)

(१०) वैयाकरणिक योग—शब्दके बाद धातु-प्रत्ययगत अर्थ, यौगिक (रूढ़ नहीं) अर्थ—(Etymological meaning) प्रकट करना।

(११) गणितशास्त्रोक्त योग—जोड़ (Addition)।

(१२) कर्मका कौशलरूप योग—इस शब्दके विकृत-भावसे मारण, उच्चाटन, वशीकरण, जादू, इन्द्रजाल आदि विद्याओंको भी 'योग-विद्या' नाम दे दिया गया है। अलौकिक ढंगसे रोगनिवारण (Remedy cure) आदि, यहाँतक कि बुरी नीयत, विश्वासघात आदि उद्देश्यपूर्तिके घृणित उपाय भी आजकल 'योग' शब्दके अन्तर्गत आ गये हैं।

योगके अलौकिक प्रभाव—

अलौकिक आविष्कार

(१) योगियोंने योगबलसे मन स्थिर करके, देहके भीतर कहाँपर क्या है, यह सब जानकर, मानसिक अवस्थाओंका पूर्णरूपसे विचार कर यन्त्र, तन्त्र और मन्त्रोंके रहस्यका आविष्कार किया है। उनके मतानुसार हरएक चक्रमें, हरएक स्नायविक केन्द्रमें एक-एक प्रकारकी अलौकिक शक्ति निहित है। उन निद्रिता शक्तियोंको प्राणवायु और ध्यानकी सहायतासे जाग्रत् करके साधक दूरदर्शन, दूरश्रवण, परचित्तविज्ञान, परकायप्रवेश, आकाशारोहण और योगबलसे देहत्याग आदि अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर सकता है।

(२) योगी सर्प, मेढक आदि जन्तुओंसे आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि योगाङ्गोंको सीखकर अपने स्वास्थ्य और आयुकी वृद्धि करनेमें समर्थ हुए थे। प्राचीन ऋषियोंकी, ईसा

आदि महात्माओंकी योगबलसे रोगियोंके रोग दूर करनेकी बात प्रसिद्ध ही है। भूकैलासमें एक बार मिट्टीके नीचेसे तीन योगियोंके शरीर निकले थे, जिसे बहुत लोग जानते हैं। महाराज रणजीतसिंहके समयमें हरिदास साधुकी योगविभूतिको देखकर बहुतसे लोग विस्मित हुए थे।

(३) योगी पञ्चभूतोंके ऊपर प्रभुत्व प्राप्तकर कैसे-कैसे अलौकिक कार्य करनेमें समर्थ होते हैं, इसका विशेष विवरण पातञ्जलदर्शनके विभूतिपादमें पाया जाता है। आजकल भी देखा जाता है कि योगी पुरुष देहके विभिन्न अङ्गोंमें चित्त स्थिर करके और प्राणवायुका संचार करके कैसे-कैसे अलौकिक कार्य सम्पन्न करते हैं। मन्त्र, औषध और समाधिजनित सिद्धि देखकर वर्तमान समयके वैज्ञानिक भी समय-समयपर विस्मित हो जाते हैं। मैस्मर साहबद्वारा आविष्कृत मैस्मेरिज्म (वशीकरण-विद्या) और हिप्नोटिज्म प्रभृति विद्याएँ वर्तमान युगके अनेक शिक्षित लोगोंका चित्त आकर्षित करती हैं। इन सब विद्याओंको हम प्राचीन योगियोंकी मारण, उच्चाटन और वशीकरण-विद्याके अन्तर्गत ही समझते हैं।

(४) योगबलसे साधक ईर्ष्या-द्वेष, सुख-दुःख, शत्रु-मित्र आदि द्वन्द्वभाव दूरकर, जितेन्द्रिय, शान्तचित्त आत्मदर्शी होकर किस प्रकार पृथ्वीपर शान्तिराज्य स्थापित करनेमें सहायक हुए थे, इसके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं शंकर, ईसामसीह, बुद्ध आदि। ये लोग आत्मतत्त्वको जानकर, सुख-दुःखसे अतीत होकर, निर्वाण प्राप्तकर अमर हो गये हैं और मनुष्यजातिके लिये वास्तविक शान्ति, मुक्ति और आनन्दका पथ बहुत कुछ सुलभ बना गये हैं। संसारमें जितना कुछ सारतत्त्वका आविष्कार हुआ है, उसका अधिकांश योगबलसे ही हुआ है। हम यहाँपर 'योग' शब्दको केवल भारतकी साधन-प्रणाली-विशेषसे सीमाबद्ध करनेका व्यर्थ प्रयास नहीं करेंगे। समस्त वैज्ञानिक और दार्शनिक आविष्कार योगके एकाग्रतासाधनके ही फल हैं।

जो लोग योगतत्त्वके सम्बन्धमें विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, वे पातञ्जलदर्शन, योगियाज्ञवल्क्यस्मृति, पवन-विजयस्वरोदय, शिवसंहिता, घेरण्डसंहिता आदि ग्रन्थोंका पाठ करें अथवा सच्चे योगियोंका संग प्राप्त करनेकी चेष्टा करें।

योगके प्रकारभेद

विभिन्न साधकोंकी रुचि और अभिज्ञताके अनुसार योगकी साधन-प्रणालीको विभिन्न भागोंमें विभक्त किया गया है। गीताकार और वर्तमान महापुरुषोंने योगको साधारणतः कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—इन तीन भागोंमें विभक्त किया है। योगके प्राचीन ग्रन्थोंमें हम हठयोग, लययोग और राजयोग—ये तीन प्रकारके भेद देखते हैं। इनमें हठयोगी नेति, धौति, वस्ति, कपालभाति, आसन, मुद्रा, त्राटक, प्राणायाम आदि शारीरिक क्रियाओंकी ओर विशेष दृष्टि रखकर देहको स्वस्थ, बलिष्ठ और कार्यशील बनानेकी विशेष चेष्टा करते हैं। लययोगी समस्त कामना, वासना, आसक्ति तथा संकल्प-विकल्पके जालसे मुक्त होकर, चित्तको वृत्तिशून्य बनाकर शान्त अवस्था प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं। उनका विश्वास है कि नित्यसिद्ध स्वयंप्रकाश आत्मतत्त्व शुद्ध, शान्त चित्तमें स्वयं स्फुरित होता है। राजयोगी देहतत्त्व और मनस्तत्त्व तथा आत्मतत्त्वको सम्यक् रूपसे जानकर स्वरूपप्रतिष्ठ—'स्वे महिम्नि अवस्थितः' होकर, इस देहराज्यके, जगत्-ब्रह्माण्डके मालिक होकर, अन्तरिन्द्रिय, बहिरिन्द्रिय और देहके ऊपर अधिकार प्राप्त करके, इन सब यन्त्रोंको अपने-अपने कार्यमें भगवदिच्छा पूरी करनेमें नियुक्तकर मुक्त राजाके समान विराजमान होते हैं। कोई-कोई साधक इस हठयोग, लययोग और राजयोगको कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगके ही अन्तर्गत समझते हैं। आसन, मुद्रा, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि आदि अष्टाङ्गयोग एवं मन्त्रयोग, जपयोग आदि यावत् योगप्रणाली इस त्रिविध योगके अन्तर्गत हैं। प्राचीन समयमें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगका अत्यन्त सुन्दर सामञ्जस्य करनेके कारण जनक, याज्ञवल्क्य प्रभृति राजर्षि और ऋषि-मुनि विशेषरूपसे प्रसिद्ध हो गये हैं। शिवका योगसाधनके प्रवर्तक योगीश्वर और श्रीकृष्णका योगेश्वररूपमें वर्णन किया गया है।

गीतादि ग्रन्थोंमें योगको कर्मकी कुशलता कहा गया है। जिस उपायसे कर्म (इष्ट) सहज, सुन्दर, स्वाभाविक रूपसे सिद्ध हो सके, अथच बन्धनका कारण न हो, उसीका नाम योग है 'योगः कर्मसु कौशलम्' (गीता)। प्राचीन कालमें ऋषिकुमार यज्ञके लिये कुश बटोरकर लानेको जाया करते थे।

उनमें तीन श्रेणीके लोग होते थे। एक श्रेणीके बालक इस प्रकार सावधानीके साथ कुश उखाड़ते कि कुश उखड़ भी आता और उनका हाथ भी न कटता, दूसरी श्रेणीके बालक कुश उखाड़ते समय अपना हाथ काट लेते और तीसरी श्रेणीके बालक हाथ कटनेके भयसे अपने अन्य साथियोंसे कुश माँगकर अपना काम चला लेते। 'कुशं लाति इति कुशलः।' जो कुछ भी ले आते हैं और हाथ भी नहीं काटते—जो संसारको सब कार्य करते हैं, परंतु मायामें आबद्ध नहीं होते, वे ही कुशल हैं और उनके इस भावको ही कौशल या योग कहते हैं। इस कुश एकत्र करनेकी प्रणालीको संसारके कर्मकाण्डके प्रतीकके रूपमें लिया जा सकता है। जो लोग संसारमें अनासक्त, निर्लिप्त रहकर, फलाकाङ्क्षारहित हो संसारके सब कर्म सम्पादित कर सकते हैं, वे ही योगी हैं। जो लोग संसारमें कर्म करते हुए संसारकी चोटोंसे घायल हो जाते हैं, वे घोर संसारी हैं और जो संसारको दुःख, कष्ट, बन्धनका कारण समझकर संसारसे बहुत दूर रहते हैं और दूसरोंके कर्मफलके ऊपर निर्भर करते हैं, वे साधारण भिक्षुक या संन्यासी-श्रेणीके अन्तर्गत हैं। कहना नहीं होगा कि यहाँपर गीतोक्त संन्यासीकी बात न कहकर साधारण वेषधारी संन्यासियोंकी ओर ही लक्ष्य रखा गया है।

'योग' शब्दका दुरुपयोग

'कर्मकी निपुणता योग है', इस भावसे 'योग' शब्द कितने प्रकारसे देश और भाव-राज्यके पतनके साथ-साथ नीचे गिर गया है, और कितने विकृत अर्थमें अब इसका प्रयोग होने लगा है, यह भी यहाँपर विचारणीय है। वर्तमान समयमें ऐन्द्रजालिक कौशल (Magic) आदि भी योगका अङ्ग समझा जाता है। मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदिकी ओर ही आजकलके योगियोंका विशेष ध्यान रहता है। किसी प्रकारकी कोई अस्वाभाविक क्रिया दिखा देनेवालोंको ही आजकल सब लोग योगी समझ लेते हैं, उनकी भक्ति करने लगते हैं और उठाते हैं। ताबीज, कवच आदिके द्वारा जो लोगोंके कर्मफलका खण्डन करनेकी हिमाकत रखते हैं, जो वन्ध्याको पुत्र-प्राप्तिके लिये दवा देते हैं और रोगियोंका रोग दूर करनेकी बात करते हैं, वे भी आजकल योगी कहे जाते हैं और पूजित होते हैं। प्राचीन कालमें जिनके हाथ ऊँचे रहकर भगवत्कार्य

करनेमें ही लगे रहते थे, वे ही ऊर्ध्वबाहु होते थे। आजकल जो लोग 'भगवदुद्देश्यकी अवहेलना करके, प्राकृतिक नियमोंका उल्लङ्घन करके, दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर उन्हें परवश कर रखते हैं, वे ही ऊर्ध्वबाहु योगी माने जाते हैं। प्राचीन समयमें योगी ध्यान, धारणा, समाधिमें इतने तन्मय हो जाया करते कि शरीरकी ओर उनका ध्यान ही न जाता, उनके बालोंमें जटाएँ बँध जातीं, शरीरपर धूल-मिट्टी आकर जम जाती। आजकल उसकी जगह बड़के दूध आदिसे ताबड़तोड़ जटा बना ली जाती है और शरीरमें मिट्टी-राख आदि मलकर योगीका स्वाँग बना लिया जाता है और भोले लोग भी यह देखकर वशीभूत हो जाते हैं। बड़े-बड़े शहरोंमें घरके मालिक जब आफिसमें या बाजार चले जाते हैं, तब न मालूम कितने पाखंडी, धूर्त योगीकी पोशाक, गेरुआ वस्त्र, विभूति आदि धारणकर गृहस्थोंके घरोंमें जाकर भोली स्त्रियोंपर अपना प्रभाव जमाकर छल, बल, कौशलसे कितने प्रकारसे धन ठगते हैं, इस बातका ख्याल आते ही मर्माहत होना पड़ता है। आजकल ऐसे धूर्त योगियोंकी संख्या और प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गयी है कि इनके कारण वास्तविक योगियोंने लोकालय और प्रसिद्ध तीर्थ आदिसे बहुत दूर जाकर रहना आरम्भ कर दिया है और गृहस्थ नकली योगियोंद्वारा ठगे जा रहे हैं। आजकल अणिमा-लघिमादि अष्ट सिद्धियोंका प्रभाव कहीं नहीं दिखायी देता। सिद्धि आजकल दूकानोंमें भाँग और गाँजा आदिमें सीमाबद्ध होकर नशेबाजीको बढ़ा रही है। भीतरसे भगवत्प्राप्तिजनित ब्रह्मानन्दके नशेमें विभोर न होकर आजके बने हुए योगी मदिरा, गाँजा, भाँग आदि नशीली चीजोंको साधनका अङ्ग कहकर उनका प्रचार करते हैं। यहाँतक कि देवादिदेव महादेवके हाथोंमें भी उन्होंने संकोच छोड़कर अणिमादि अष्ट सिद्धियोंके बदले भंगका प्याला और गाँजेकी चिलम दे दी है।

यथार्थ योगके प्रचारकी आवश्यकता

देश और भावके पतनके साथ-ही-साथ सभी बातोंमें स्वाभाविक ही कुछ-न-कुछ विकृति आ गयी है। वर्तमान समयमें आवश्यकता है उसके उचित संशोधनकी। योगादि साधन-प्रणालीके अंदर जब बहुत-से सुन्दर-सुन्दर तत्त्व निहित हैं, उसकी सहायतासे जब स्वास्थ्य-प्राप्ति, एकाग्रता-शान्ति,

आनन्द-प्राप्ति, उन्नति-प्राप्ति, भगवद्दर्शन, भगवत्प्राप्ति, जीवका कल्याण-साधन सहज, सुन्दर और स्वाभाविकरूपमें सुसाधित होनेकी सम्भावना है, तब इस योगसाधनप्रणालीका संशोधन करने, इसकी उन्नतिका उपाय करने, इसकी शिक्षा देने तथा सर्वसाधारणके सामने योगके उदार मत, भाव और कालका एक उच्च आदर्श रखनेकी विशेष आवश्यकता है। यह सर्वसाधारणको समझा देना होगा कि वास्तविक योग क्या है, वह कितने रूपोंमें विभक्त है, उसकी साधन-प्रणाली क्या है, किस तरह संसारके जीवोंके हितसाधनमें उन्हें आनन्द प्रदान करनेमें इसका प्रयोग किया जा सकता है। कर्मयोगी किस प्रकार कर्मके रहस्यको समझकर, अनासक्त, निष्काम, फलाकाङ्क्षासे रहित होकर केवल भगवत्प्रीतिके लिये जीवोंका कल्याण करनेमें भगवद्बुद्धि रखकर कर्म किया करते हैं, यह सुन्दर रूपमें समझा देना होगा। ज्ञानयोगी इन्द्रियोंको संयत करके, चित्तको शुद्ध और शान्त करके, स्वरूपप्रतिष्ठ, आत्मभावमें स्थित होकर किस प्रकार समाधियोगके द्वारा परमात्मामें तन्मय हुए रहते हैं, यह भी समझ लेना होगा।

सच्चे योगियोंकी स्थिति

योगीगण देह, मन, प्राणको शुद्ध और शान्त करके मूलाधारसे कुलकुण्डलिनीको जाग्रत् करके, सब चक्रोंमें, सब केन्द्रोंमें छिपी हुई शक्तिको प्रबुद्ध करके, समस्त शक्ति, ज्ञान, ऐश्वर्यसे विभूषित होकर, सहस्रारमें स्थित सदाशिवसे, परमात्मासे युक्त होकर, तन्मयत्व प्राप्त करके, ज्योतिर्मय देहसे भगवान्के साथ किस प्रकार आनन्दसमाधिमें विभोर रहते हैं, जगत्का कल्याण करनेमें, भगवान्की इच्छा पूरी करनेमें नियुक्त रहते हैं, यह तत्त्व अच्छी तरह समझ लेना होगा। भक्तियोगी प्रेमके साधक होते हैं, उनके भगवान् सब भूतोंमें विराजमान रहते हैं। समस्त जगत्, समस्त जीव-देह उनके प्रियतम श्रीभगवान्की मूर्ति या मन्दिर हैं। श्रीभगवान् प्रकृतिके सब तत्त्वोंमें, सब देहोंमें विराजित रहकर जीवके कर्म, ज्ञान और भक्तिके अंदरसे अपना सच्चिदानन्दभाव प्रकट कर रहे हैं। वास्तविक साधक आँख, कान, नाक आदि बाहरी इन्द्रियों तथा मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त आदि भीतरी इन्द्रियोंके द्वारा अपने प्राणाराम श्रीभगवान्के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य आदिका अनुभव कर हृषीकेश-

सेवारूप उत्तमा बुद्धिके साधनकी सहायतासे भगवत्-मिलनके आनन्दमें विभोर रहते हैं।

साधनराज्यके योगसाधनका सार-तत्त्व यही है कि हमारे अंदर भगवान्की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम और आनन्द निहित है। हमारी कामना, वासना, आसक्ति, हमारी अज्ञानता, हमारे कुसंस्कार, हमारा स्वार्थ, आत्मसुखकी स्पृहा, अहंकार और प्रतिष्ठाका मोह आदि उस भगवत्-शक्तिके विकासमें बाधा पहुँचाते हैं। अतएव हम जितना ही इन सब बाधाओंसे मुक्त, शुद्ध, शान्त, पवित्र होंगे उतने ही भगवद्भाव हमारे अंदर प्रकाशित होंगे, हम साधन-राज्यमें सिद्धि प्राप्त करेंगे। भगवान्के और हमारे बीचका यह काल्पनिक व्यवधान जितना ही दूर होगा, उतना ही हम भगवान्के साथ युक्त होने और मिलनेकी योग्यता प्राप्त करेंगे। जहाँ इन सब उपाधियोंके प्रति आसक्ति, स्पृहा दृष्टिगोचर हो वहीं यह समझ लेना चाहिये कि साधक गलत रास्तेपर चल रहा है, उसका पतन और उसके द्वारा देशका अमङ्गल अवश्यम्भावी है। योगी थे भारतके प्राचीन ऋषि-मुनि, जो संयत, शुद्ध, शान्त और पवित्र होकर भगवान्में तन्मयता प्राप्त करके जीवोंका कल्याण करनेमें तल्लीन रहा करते थे, वे लोग ममतारहित, अहंकाररहित थे; वे लोग प्रतिष्ठाको शूकरकी विष्ठाकी तरह त्याग देते थे। वे जगत्को ब्रह्ममय देखते थे, सर्वत्र ब्रह्मदर्शन, ब्रह्मानुभूति, ब्रह्मसेवा, जीवसेवा उनके जीवनकी प्रधान साधना थी। योगिनियाँ थीं वृन्दावनकी गोपियाँ जिनकी आँखोंकी साधना थी सर्वत्र भगवद्दर्शन, कानोंकी साधना थी सब शब्दोंके भीतर श्रीभगवान्की वंशीध्वनि सुनना, उनका मन, प्राण सर्वदा भगवान्की सेवा और ध्यानमें डूबे रहते। इन्द्रियोंद्वारा इन्द्रियाधीशकी अनुभूति और सेवा क्या चीज है, कर्म किस तरह भगवदाराधनामें पर्यवसित होता है, बातचीत किस प्रकार भगवद्गुण गानेमें, चलना किस प्रकार भगवत्प्रेममें नाचने और भगवान्के मन्दिरकी प्रदक्षिणामें, चिन्तन किस प्रकार ध्यानमें और समस्त जीवन किस प्रकार ब्रह्मानन्दकी अनुभूतिमें पर्यवसित होता है, गोपी-प्रेमके भीतर इसका आस्वाद करनेका सुयोग हम पाते हैं। उनकी देह, मन, प्राण, आत्मा सर्वदा श्रीभगवान्के कार्य करनेमें युक्त रहा करते, अतएव हम प्रधान योगियोंके रूपमें

उनकी भक्ति करनेके लिये बाध्य हैं। श्रीकृष्णको देखना, श्रीकृष्णका ध्यान करना और श्रीकृष्णकी सेवा करना ही उनकी प्रधान साधना थी। वे इस साधनामें तन्मयता प्राप्त करके सम्पूर्ण रूपमें अपनेको भूलकर 'इतर-राग-विस्मारक' कृष्ण-प्रेमार्णवमें निमग्न होकर, श्रीकृष्णमें तन्मयता प्राप्तकर श्रीकृष्णके साथ युक्त हो जातीं, मिल जातीं—

तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनमेतदेकपरत्वम् ।

—इस भावकी साधना ही थी गोपियोंकी परम योगसाधना। वे थीं तन्मनस्का, तदात्मिका। वे अपनी देहके

प्रत्येक तत्त्वमें अपने प्राणाराम श्रीकृष्णचन्द्रके साथ युक्त रहकर श्रीकृष्णमय हो जातीं। वे जगत्को कृष्णमय देखतीं—
जित देखौं तित स्याममयी है।

अतएव

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनम् ॥

—रूपी योगकी सिद्धावस्थाको वे प्राप्त कर चुकी थीं।

इसी योगके फलस्वरूप अष्ट सिद्धियाँ उनके चरणोंमें आकर लोटतीं तो भी वे सिद्धिको, भुक्ति-मुक्तिकी वासनाको बन्धनका कारण समझकर उनसे घृणा करतीं।

पिपीलिकामार्ग और विहङ्गममार्ग

(गङ्गोत्तरीनिवासी परमहंस परिव्राजकाचार्य दण्डिस्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती)

हिन्दुओंके वेद, वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, उपपुराण, संहिता, धर्मशास्त्र और तन्त्रशास्त्र सभी एक स्वरसे कहते हैं कि साधनजगत्में साधकको मुक्ति प्रदान करनेवाले दो प्रशस्त मार्ग विद्यमान हैं। उनमें एकका नाम है पिपीलिकामार्ग और दूसरेका नाम है विहङ्गममार्ग। अतएव यह जिज्ञासा होती है कि ये दोनों मार्ग क्या हैं? तथा इन दोनों मार्गोंके प्रवर्तक कौन हैं?

शुकश्च वामदेवश्च द्वे सृती देवनिर्मिते ।

शुको विहङ्गमः प्रोक्तो वामदेवः पिपीलिका ॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण साक्षाद्विधिमुखेन वा ।

महावाक्यविचारेण सांख्ययोगसमाधिना ॥

विदित्वा स्वात्मनो रूपं सम्प्रज्ञातसमाधितः ।

शुकमार्गेण विरजाः प्रयान्ति परमं पदम् ॥

यमाद्यासनजायासहठाभ्यासात्युनः पुनः ।

विघ्नबाहुल्यसञ्जात अणिमादिवशादिह ॥

अलब्ध्वापि फलं सम्यक् पुनर्भूत्वा महाकुले ।

पूर्ववासनयैवायं योगाभ्यासं पुनश्चरन् ॥

अनेकजन्माभ्यासेन वामदेवेन वै पथा ।

सोऽपि मुक्तिं समाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

द्वाविमावपि पन्थानौ ब्रह्मप्राप्तिकरौ शिवौ ।

सद्योमुक्तिप्रदश्चैकः क्रममुक्तिप्रदः परः ॥

(वराहोपनिषद् ४।३६—४२)

काम-क्रोधादि रिपुओंसे सङ्कुलित इस संसाररूपी महारण्यके सुदीर्घ मार्गमें संसार-पथ-श्रान्त-क्लान्त जीवके

नित्य-सुख, परमशान्ति, स्थायी आनन्दके लीला-निकेतन निज भवनमें उपनीत होनेके लिये देवनिर्मित सुप्रशस्त दो मार्ग विद्यमान हैं—शुकमार्ग और वामदेवमार्ग। उनमें बालविरागी परम आत्मज्ञानी शुकदेवके द्वारा उपदिष्ट मार्गको विहङ्गममार्ग तथा वामदेवके द्वारा उपदिष्ट मार्गको पिपीलिकामार्ग कहा गया है। शुकदेवमार्ग और वामदेवमार्ग इन दोनों मार्गोंका अनुसरण करनेसे संसार-पथ-श्रान्त-क्लान्त जीवको मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है। परंतु शुकदेवोपदिष्ट मार्गका अनुसरण करने-वाला महावाक्यविचारद्वारा अथवा सांख्ययोगसमाधिविधिविद्वत्कोटिचन्द्रोत्फुल्ल, चिर-उज्ज्वल, चिर-ज्योतिष्मान् स्वरूपको जानकर अनायास चिर-सुखशान्तिमय ब्रह्मानन्दसुखाह्वय परमपद मोक्षसाम्राज्यको प्राप्त करता है और वामदेवमार्गका अनुसरण करनेवाला संसार-पथ-श्रान्त-क्लान्त जीव यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिरूप अष्टाङ्ग हठयोगका अभ्यास कर विघ्नबाहुल्य-संजात अणिमादि अष्ट सिद्धियोंको प्राप्त करता हुआ, कभी ऊर्ध्वगामी और कभी अधःपतित होता हुआ असीम सुषमाकर अनन्त वैचित्र्यपूर्ण नाना जीव-सङ्कुल, शोभनसौन्दर्यमय सुविशाल मर्त्यधामको पुनः लौटकर अतुल ऐश्वर्यका अधीश्वर होकर, राजराजेश्वरकी सुधाधवलित आकाशभेदी सुरम्य हर्म्यवलीमें निवास करता हुआ, पार्थिव सुखैश्वर्यको प्राप्त होता

है, अथवा अणिमादि अष्टसिद्धिरूप फलको बिना प्राप्त किये सत्कुलमें जन्म लेकर, पूर्वाभ्यासद्वारा पुनः योगाभ्यास करते-करते, सौभाग्यसे ज्ञानोदय होनेपर परमशान्ति—मुक्ति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। अतएव यह ज्ञात हुआ कि वामदेवोपदिष्ट मार्गका अनुसरण करनेवाला जीव उत्थान-पतनके विवर्तनमें पड़कर अनेक जन्मोंके बारंबार प्राप्त किये हुए ज्ञानके क्रमविकाससे अनेकों जन्मोंके अन्तमें परमपदलाभ करनेमें समर्थ होता है। परंतु बालविरागी, ज्ञानरसिक शुकदेवके द्वारा उपदिष्ट मार्गका अनुसरण करनेवाला जीव केवल भक्तिरसमें अपने हृदयको आलुतकर महावाक्य-विचारद्वारा, सांख्ययोग-समाधिद्वारा अथवा असम्प्रज्ञात समाधिमें स्थित होकर क्षिप्त मनको शान्तकर, षड्रिपुओंका दमन कर, इन्द्रियोंके मार्गका अवरोध कर, मिथ्या आडम्बरको त्यागकर, निर्लिप्तचित्त होकर, अपने हृदयकमलके रक्त-स्तबकमें—

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।

—त्रितापहारी सनातनसखा जगज्ज्योतिकी दिव्यद्युतिकी निरीक्षण कर, ब्रह्मसायुज्यकारिणी, मोक्षद्वारके कपाटको अनावृत करनेवाली भक्तिदेवीके प्रसादसे देव-दुर्लभ मुक्तिलाभ करता है। अतएव शुकदेवमार्ग और वामदेव-मार्ग—ये दोनों ही मार्ग ब्रह्मप्राप्तिकर और मङ्गलजनक हैं। इनमें विशेषता यही है कि शुकदेवमार्गका अनुसरण करनेवाला जीव आत्मकल्याणमें निरत होकर शीघ्र ही अभीष्टलाभ करनेमें समर्थ होता है और वामदेवमार्गका अनुसरण करनेवाला जीव एक जन्ममें समर्थ नहीं होता, कितने ही युग-युगान्तर घूमते-घूमते अनेकों जन्म योगाभ्यासमें व्यतीतकर अनेक जन्म-जन्मान्तरके बारंबार प्राप्त ज्ञानके विकाससे अभीष्ट-लाभ करनेमें समर्थ होता है। अतएव बालविरागी शुकदेवके द्वारा

उपदिष्टमार्ग ही सद्योमुक्तिप्रद है तथा योगिराज वामदेवके द्वारा उपदिष्ट मार्ग क्रममुक्तिप्रद है तथापि दोनों ही मार्ग जीवके लिये कल्याणप्रद हैं। क्योंकि—

शुको मुक्तो वामदेवोऽपि मुक्त-

स्ताभ्यां विना मुक्तिभाजो न सन्ति ।

शुकमार्गं येऽनुसरन्ति धीराः

सद्यो मुक्तास्ते भवन्तीह लोके ॥

वामदेवं येऽनुसरन्ति नित्यं

मृत्वा जनित्वा च पुनः पुनस्तत् ।

ते वै लोके क्रममुक्ता भवन्ति

योगैः साङ्ख्यैः कर्मभिः सत्त्वयुक्तैः ॥

(वराहोपनिषद् ४।३४-३५)

ज्ञान-वैराग्य-रसिक बालविरागी शुकदेव गोस्वामी अथवा योगिराज वामदेव दोनों ही मुक्त पुरुष हैं। परंतु इनमेंसे एकने तो शीघ्र ही मुक्तिलाभ किया है और दूसरेने अनेकों जन्मोंके अन्तमें मुक्तिलाभ किया है। यही इन दोनोंमें अन्तर है। अतएव इन दोनों मार्गोंमें जो बालविरागी, वैराग्यरसिक शुकदेवके मार्गका अनुसरण करेंगे, वे अनायास ही सद्योमुक्तिलाभ करेंगे और जो उसे छोड़कर आयाससाध्य योगिराज वामदेवके मार्गका अनुसरण करेंगे वे पुनः-पुनः जन्म-मृत्युके विवर्तनमें पड़कर युग-युगान्तरके आवागमनके पश्चात् अनेक जन्मोंके पुण्यप्रभावसे अनेक जन्म धारणकर अष्टाङ्गयोग-साधन, सांख्ययोग-साधन तथा कर्मानुष्ठान कर साधनसम्पत्तिसे युक्त होकर सत्त्वगुणसे भूषित हो शुद्धसत्त्वबुद्धिद्वारा अनेकों ज्ञानान्वेषण, प्रमाण-पर्यवेक्षण, ध्यान-धारणादिके द्वारा आत्मज्ञान होनेपर जन्म-जन्मान्तरके सञ्चित ज्ञानके क्रमिक विकाससे क्रममुक्ति प्राप्त करेंगे।

प्रेमयोग

तन है तुपक जीव गोली प्रीत दारू भर, मनका पलीता चाह प्यालेसों लगानेपै ।
सूक्ष्म जो इष्टवेध ताही माँझ दृष्टि राखै, सिस्तको लगाये रहे एक ही ठिकानेपै ॥
दया धर्म पग रोपै साधन सकल सिद्धि, धिक है सुचन्द ताकौ मन दै खिसानेपै ।
सोई बड़ौ सूर जाको नेह भरपूर रहै, छूटत ही देह प्राण लागत निसानेपै ॥

—गो० श्रीहितपरमानन्दजी

जपयोग

(बालयोगी श्रीबालस्वामीजी महाराज (श्री न०रा० निगुडकर)के अनुभवयुक्त विचार)

[विशेषाङ्क पृ० १५३ से आगे]

जपके अनेक प्रकार हैं। उन सबको समझ लें तो एक जपयोगमें ही सब साधन आ जाते हैं। परमार्थसाधनके कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और राजयोग—ये चार बड़े विभाग हैं। जपयोगमें इन चारोंका अन्तर्भाव हो जाता है। जपके कुछ मुख्य प्रकार ये हैं—(१) नित्य-जप, (२) नैमित्तिक जप, (३) काम्य जप, (४) निषिद्ध जप, (५) प्रायश्चित्त जप, (६) अचल जप, (७) चल जप, (८) वाचिक जप, (९) उपांशु जप, (१०) भ्रमर-जप, (११) मानस जप, (१२) अखण्ड जप, (१३) अजपा-जप और (१४) प्रदक्षिणा-जप आदि। यहाँ इनका संक्षेपमें वर्णन किया जा रहा है—

१-नित्य जप—प्रातः-सायं गुरुमन्त्रका जो नित्य-नियमित जप किया जाता है वह नित्य-जप है। यह जप जपयोगीको नित्य ही करना चाहिये। आपत्कालमें, यात्रामें अथवा बीमारीकी अवस्थामें, जब स्नान भी नहीं कर सकते तब भी हाथ, पैर और मुँह धोकर कम-से-कम कुछ जप तो अवश्य कर ही लेना चाहिये। जैसे झाड़ना-बुहारना, बर्तन मलना और कपड़े धोना रोजका ही काम है, वैसे ही नित्यकर्म भी नित्य ही होना चाहिये। उससे नित्यदोष दूर होते हैं, जपका अभ्यास बढ़ता है, आनन्द बढ़ता जाता है और चित्त शुद्ध होता जाता है। ईश्वरकी समीपता बढ़ती जाती है। वाणी शुद्ध होती है और धर्मविचार स्फुरने लगते हैं। पाप और अधर्मसे घृणा होने लगती है। ऐसे अनेक लाभ हैं और जपसंख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों ईश्वरीय कृपा अनुभूत होने लगती है और अपनी निष्ठा दृढ़ होती जाती है।

२-नैमित्तिक जप—किसी निमित्तसे जो जप होता है वह नैमित्तिक जप है। देव-पितरोंके सम्बन्धमें कोई हो तब भी यह जप किया जाता है। सप्ताहमें अपने इष्टका जप एक-न-एक बार होता ही है। उस दिन तथा एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या आदि पर्वदिनोंमें और महा एकादशी, महाशिवरात्रि, श्रीरामनवमी, श्रीकृष्णाष्टमी, श्रीदुर्गानवरात्र, श्रीगणेशचतुर्थी, श्रीरथसप्तमी आदि शुभ दिनोंमें तथा ग्रहणादि

पर्वोपर एकान्त स्थानमें बैठकर अधिक अतिरिक्त जप करना चाहिये। इससे पुण्य-संग्रह बढ़ता है और पापका नाश होकर सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है और ज्ञान सुलभ होता है। यह जप रातमें एकान्तमें करनेसे दृष्टान्त भी होते हैं। 'न देवतोषणं व्यर्थम्'—देवको प्रसन्न करना कभी व्यर्थ नहीं होता, यही मन्त्रशास्त्रका कहना है। इष्टकालमें इसकी सफलता आप ही होती है। पितरोंके लिये किया हुआ जप उनके सुख और सद्गतिका कारण होता है और उनसे आशीर्वाद मिलते हैं। हमारा उनकी कोखसे जन्म लेना भी इस प्रकार चरितार्थ हो जाता है। जिसको उद्दिष्ट करके संकल्पपूर्वक जो जप किया जाता है, वह उसीको प्राप्त होता है, यह मन्त्रशास्त्रका सिद्धान्त है। इस प्रकार पुण्य जोड़कर वह पितरोंको पहुँचाया जा सकता है, इससे उनके ऋणसे मुक्ति मिल सकती है। इसलिये कव्यकर्मके प्रसङ्गमें और पितृपक्षमें भी यह जप अवश्य करना चाहिये। गुरुमन्त्रसे हव्यकर्म भी होता है।

३-काम्य जप—किसी कामनाकी सिद्धिके लिये जो जप किया जाता है उसे काम्य जप कहते हैं। यह काम्यकर्म-जैसा है, मोक्ष चाहनेवालेके कामका नहीं। यह आर्त, अर्थार्थी, कामकामी लोगोंके लिये उपयोगी है। इसके साधनमें पवित्रता, नियमोंका पूर्ण पालन, सावधानता, जागरूकता, धैर्य, निरलसता, मनोनिग्रह, इन्द्रियनिग्रह, वाक्संयम, मिताहार, मितशयन, ब्रह्मचर्य—इन सबका होना अत्यन्त ही आवश्यक है। योग्य गुरुसे योग्य समयमें लिया हुआ योग्य मन्त्र हो, विधिपूर्वक जप हो, मनकी एकाग्रता हो, दक्षिणा दे, भोजन कराये, हवन करे—इस साङ्गताके साथ अनुष्ठान हो तो साधककी कामना अवश्य पूर्ण होती है। इसमें कोई गड़बड़ हो तो मन्त्र सिद्ध नहीं हो सकता। काम्य जप करनेके अनेक मन्त्र हैं। जपसे पुण्यसंग्रह तो होता है, पर भोगसे उसका क्षय भी होता है, इसलिये प्राज्ञ पुरुष इसे अच्छा नहीं समझते, परंतु सभी साधक समान नहीं होते। कुछ ऐसे भी कनिष्ठ साधक होते ही हैं जो शुद्ध मोक्षके अतिरिक्त अन्य धर्माविरुद्ध कामनाएँ भी पूरी करना चाहते हैं। क्षुद्र देवताओं और क्षुद्र

साधनोंके पीछे पड़कर अपनी भयंकर हानि कर लेनेकी अपेक्षा, वे अपने इष्ट मन्त्रका काम्य जप करके चित्तको शान्त करें और परमार्थप्रवण हों, यह अधिक अच्छा है।

४-निषिद्ध जप—मनमाने ढंगसे अविधिपूर्वक अनियम जप जपनेको निषिद्ध जप कहते हैं। निषिद्ध कर्मकी तरह यह बहुत बुरा है। मन्त्रका शुद्ध न होना, अपवित्र मनुष्यसे मन्त्र लेना, देवता कोई हो और मन्त्र कोई और हो, अनेक मन्त्रोंको एक साथ अविधिपूर्वक जपना, मन्त्रका अर्थ और विधि न जानना, श्रद्धाका न होना, देवताराधनके बिना ही जप करना, किसी प्रकारका भी संयम न रखना ये सब निषिद्ध जपके लक्षण हैं। ऐसा निषिद्ध जप कोई न करे, उससे लाभ होनेके बदले प्रायः हानि ही हुआ करती है।^१

५-प्रायश्चित्त जप—अपने हाथसे अनजानेमें यदि कोई दोष या प्रमाद हो जाय तो उस दुरितके नाशके लिये जो जप किया जाता है वह प्रायश्चित्त जप कहलाता है। यह प्रायश्चित्त कर्मके सदृश है और आवश्यक है। मनुष्यके मनकी सहज गति अधोगतिकी ओर है और इससे उसके हाथों अनेक प्रमाद हो सकते हैं। यदि इन दोषोंका परिमार्जन न हो तो अशुभ कर्मोंका सञ्चित निर्माण होकर मनुष्यको अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं और उर्वरित सञ्चित प्रारब्ध बनकर भावी दुःखोंकी सृष्टि करता है। पापोंके नाशके लिये शास्त्रमें जो उपाय बताये गये हैं, उनको करना इस समय इतना कठिन हो गया है कि प्रायः असम्भव ही कह सकते हैं। इसलिये ऐसे जो कोई हों वे यदि संकल्पपूर्वक यह जप करें तो विमलात्मा बन सकते हैं। मनुष्यसे नित्य ही अनेक प्रकारके दोष हो जाते हैं। यह मानव-स्वभाव है। इसलिये नित्य ही उन दोषोंको नष्ट करना मनुष्यका कर्तव्य ही है। नित्य जपके साथ यह जप भी हुआ करे। अल्प दोषके लिये अल्प और अधिकके लिये अधिक जप करना चाहिये। नित्यका नियम करके चलाना कठिन मालूम हो तो सप्ताहमें एक ही दिन सही, यह काम करना चाहिये। प्रातःकालमें पहले गोमूत्र-प्राशन करे, तब गङ्गाजीमें या जो तीर्थ प्राप्त हो उसमें स्नान करे। यह भी न हो तो 'गङ्गा गङ्गेति' मन्त्र कहते हुए स्नान करे और भस्म-चन्दनादि लगाकर देव, गुरु, द्विज आदिके दर्शन करे। अश्वत्थ, गौ

आदिकी परिक्रमा करे। केवल तुलसीदल-तीर्थ-पान करके उपवास करे और मनको एकाग्र करके संकल्पपूर्वक अपने मन्त्रका जप करे। इससे पवित्रता बढ़ेगी और मन आनन्दसे झूमने लगेगा। जब ऐसा हो तब समझे कि अब सब पाप भस्म हो गये। दोषके हिसाबसे जपसंख्या निश्चित करे और वह संख्या पूरी करे।

६-अचल जप—यह जप करनेके लिये आसन, गोमुखी आदि तथा व्यावहारिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक होना चाहिये। इस जपसे अपने अंदर जो गुप्त शक्तियाँ हैं, वे जागकर विकसित होती हैं और परोपकारमें उनका उपयोग करते बनता है। इसमें इच्छा-शक्तिके साथ-साथ पुण्य-संग्रह बढ़ता जाता है। इस जपके लिये व्याघ्राम्बर अथवा मृगाजिन, माला और गोमुखी होनी चाहिये। स्नानादि करके आसनपर बैठे, देश-कालका स्मरण करके दिग्बन्ध करे और तब जप आरम्भ करे। अमुक मन्त्रका अमुक संख्यामें जप होना चाहिये और नित्य इतना होना चाहिये, इस प्रकारका नियम इस विषयमें रहता है, सो समझ लेना चाहिये और नित्य उतना जप एकाग्रतापूर्वक करना चाहिये। जप निश्चित संख्यासे कभी कम न हो। जप करते हुए बीचमें ही आसनपरसे उठना या किसीसे बात करना ठीक नहीं, उतने समयतक चित्तकी और शरीरकी स्थिरता और मौन साधे रहना चाहिये। इस प्रकार नित्य करके जपकी पूर्ण संख्या पूरी करनी चाहिये। यह चर्या बीचमें कहीं खण्डित न हो। इसके लिये स्वास्थ्य ठीक होना चाहिये, इसलिये आहार-विहार नियमित हो। एक स्थानपर बैठकर निश्चित समयमें निश्चित जप-संख्या एकाग्र होकर पूरी करके देवताको वशमें करना ही इस जपका मुख्य लक्षण है। इस काममें विघ्न तो होते ही हैं, पर धैर्यसे उन्हें पार कर जाना चाहिये। इस जपसे अपार आध्यात्मिक शक्ति संचित होती है। भस्म, जल अभिमन्त्रित कर देनेसे वह उपकारी होता है, यह बात अनुभवसिद्ध है।

७-चल जप—यह जप नामस्मरण-जैसा है। प्रसिद्ध वामन पण्डितके कथनानुसार 'आते-जाते, उठते-बैठते, करते-धरते, देते-लेते, मुखसे अन्न खाते, सोते-जागते, सदा-सर्वदा लोकलाज छोड़कर भगवच्चिन्तन करनेकी जो विधि है वही इस

१- भगवान्के नाममें कोई विधि-निषेध नहीं है।

जपकी है', अन्तर यही है कि भगवन्नामके स्थानमें अपने मन्त्रका जप करना है। यह जप कोई भी कर सकता है। इसमें कोई बन्धन, नियम या प्रतिबन्ध नहीं है। अन्य जप करनेवाले भी इसे कर सकते हैं। इससे वाणी शुद्ध होती और वाक्शक्ति प्राप्त होती है। पर इस जपको करनेवाला कभी मिथ्या भाषण न करे; निन्दा, कठोर भाषण, जली-कटी सुनाना, अधिक बोलना—इन दोषोंसे बराबर बचता रहे। इससे बड़ी शक्ति संचित होती है। इस जपसे समय सार्थक होता है, मन प्रसन्न रहता है — संकट-कष्ट-दुःख, आघात, उत्पात, अपघात आदिका मनपर कोई असर नहीं होता। जप करनेवाला सदा सुरक्षित रहता है। सुखपूर्वक संसार-यात्रा पूरी करके अनायास परमार्थको प्राप्त होता है। उसकी उत्तम गति होती है, उसके सब कर्म यज्ञमय होते हैं और इस कारण वह कर्मबन्धनसे छूट जाता है। मन निर्विषय हो जाता है। ईश-सांनिध्य बढ़ता और साधक निर्भय होता है। उसका योगक्षेम भगवान् वहन करते हैं। वह मनसे ईश्वरके समीप और तनसे संसारमें रहता है। इस जपके लिये यों तो मालाकी कोई आवश्यकता नहीं है, पर कुछ लोग छोटी-सी 'सुमिरनी' रखते हैं, इसलिये कि कहीं विस्मरण होनेका-सा मौका आ जाय तो वहाँ यह 'सुमिरनी' विस्मरण न होने देगी। 'सुमिरनी' छोटी होनी चाहिये, वस्त्रमें छिपी रहनी चाहिये, किसीको दिखायी न दे। सुमिरन करते हुए होंठ भी न हिलें। सब काम चुपचाप होना चाहिये, किसीको कुछ मालूम न हो।

८-वाचिक जप—जिस जपका इतने जोरसे उच्चारण होता है कि दूसरे भी सुन सकें, उसे वाचिक जप कहते हैं। बहुतोंके विचारमें यह जप निम्न कोटिका है और इससे कुछ लाभ नहीं है। परंतु विचार और अनुभवसे यह कहा जा सकता है कि यह जप भी अच्छा है। विधि-यज्ञकी अपेक्षा वाचिक जप दसगुना श्रेष्ठ है, यह स्वयं मनु महाराजने ही कहा

है। जपयोगीके लिये पहले यही जप सुगम होता है। आगेके जप क्रमसाध्य और अभ्याससाध्य हैं। इस जपसे कुछ यौगिक लाभ होते हैं। सूक्ष्म शरीरमें जो षट्चक्र हैं, उनमें कुछ वर्णबीज होते हैं। महत्त्वपूर्ण मन्त्रोंमें उनका विनियोग रहता है। इस विषयको विद्वान् और अनुभवी जपयोगियोंसे जानकर भावनापूर्वक जप करनेसे वे वर्णबीज-शक्तियाँ जाग उठती हैं। इस जपसे वाक्सिद्धि तो होती ही है, उसके शब्दोंका बड़ा महत्त्व भी होता है। वे शब्द कभी व्यर्थ नहीं होते। अन्य लोग उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। जितना जप हुआ रहता है, उसी हिसाबसे यह अनुभव भी प्राप्त होता है। एक वाक्शक्ति भी सिद्ध हो जाय तो उससे संसारके बड़े-बड़े काम हो सकते हैं। कारण, संसारके बहुत-से काम वाणीसे ही होते हैं। वाक्शक्ति संसारकी समूची शक्तिका तीसरा हिस्सा है। यह जप प्रपञ्च और परमार्थ दोनोंके लिये उपयोगी है।

९-उपांशु जप—वाचिक जपके बादका यह जप है। इस जपमें होंठ हिलते हैं और मुँहमें ही उच्चारण होता है, स्वयं ही सुन सकते हैं, बाहर और किसीको सुनायी नहीं देता। विधियज्ञकी अपेक्षा मनु महाराज कहते हैं कि यह जप सौगुना श्रेष्ठ है। इससे मनको मूर्च्छना होने लगती है, एकाग्रता आरम्भ होती है, वृत्तियाँ अन्तर्मुख होने लगती हैं और वाचिक जपके जो-जो लाभ होते हैं वे सब इसमें होते हैं। इससे अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गमें उष्णता बढ़ती हुई प्रतीत होती है। यही तपका तेज है। इस जपमें दृष्टि अर्धोन्मीलित रहती है। एक नशा-सा आता है और मनोवृत्तियाँ कुण्ठित-सी होती हैं, यही मूर्च्छना है। इसके द्वारा साधक क्रमशः स्थूलसे सूक्ष्ममें प्रवेश करता है। वाणीके सहज गुण प्रकट होते हैं। मन्त्रका प्रत्येक उच्चारण मस्तकपर कुछ असर करता-सा मालूम होता है—भालप्रदेश और ललाटमें वेदनाएँ अनुभूत होती हैं। अभ्याससे पीछे स्थिरता आ जाती है। (क्रमशः)

अन्तःकरणमें राग-द्वेष रहते हैं, इसीसे रति, आरति और लोमहर्ष उत्पन्न होते हैं, इसीसे मनमें वितर्क उत्पन्न होता है। जो इनका निदान जानते हैं, वे आनन्द प्राप्त करते हैं और इस दुस्तर ओघको पार करके निर्वाण प्राप्त करते हैं, उनका पुनर्भव नहीं होता।—भगवान् बुद्धदेव

मनुष्य जितना ही मनकी वासनाओंका आदेश पालन करता है, उतना ही अधिक रोगी, दुखी और असंतोषी बनता है।

—राल्फ वाल्डो ट्राइन

ध्यानयोग क्या है ?

(आचार्य डॉ० श्रीशुकरलजी उपाध्याय)

योगकी सार्वभौमिकता

वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, स्मृति आदि समस्त भारतीय वाङ्मय योगकी महिमासे भरे पड़े हैं—

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्राविप्रस्य महतो विपश्चितः ।

विहोत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितः परिष्टुतिः ॥

(ऋ० ५।८१।१, यजु० ५।१४; ११।४; ३७।२)

उस महान् विद्यानिधि, विशेषतया सर्वत्र व्याप्त ब्रह्मको प्राप्त करनेके लिये याज्ञिक ब्राह्मण अपने मन एवं बुद्धिको लगाते हैं। वह समस्त ज्ञान-विज्ञानको जाननेवाला प्रभु अकेला ही इस विशाल ब्रह्माण्डको बनाता और विविध रूपोंद्वारा धारण करता है। सबके प्रेरक उस महान् सविता देवकी यह बड़ी भारी स्तुतिके योग्य सामर्थ्य है।

इस मन्त्रमें योगका बीज अथवा मूल सिद्धान्त है। एक प्रकारसे समस्त योगशास्त्र इसी मन्त्रकी विशद व्याख्या हैं।

पद्मासन या सिद्धासन लगाकर निर्गुण या सगुण परमात्माका ध्यान करना 'ध्यानयोग' कहलाता है। इसके अभ्याससे स्थिरता, शान्ति, आत्मविश्वास, दुःसह कष्टमें धैर्यभाव, जीवन और सृष्टिके शाश्वत नियमोंका साक्षात्कार, जीवन और व्यवहारमें अद्भुत संतुलन एवं सामञ्जस्य आदि महत्त्वपूर्ण बातें प्रकट होने लगती हैं।

चित् शक्ति तो सदा ही शुद्ध है, किंतु दर्पणके सम्मुख स्थित जपापुष्पके रखनेकी भाँति उसके समक्ष रज, तमयुक्त पदार्थोंका प्रतिबिम्ब-रूप प्रभाव पड़ता है। चित्तशुद्धि ही ध्यानयोगका मुख्य फल है। समाधि-सिद्धिमें बाधक तत्व विक्षेप कहलाते हैं। मनुष्यके चित्तमें अनेक जन्मोंसे अर्जित सहस्रों वासनाएँ संचित हो गयी हैं। योगके द्वारा ही वासना-जालका निराकरण होता है। समस्त दोषोंके मूल कामनाओंका उन्मूलन ही योगका मुख्य ध्येय है।

इस क्रममें विषाद और तनावको दूर करने तथा चित्तमें प्रसाद-गुण एवं प्रशान्तवाहिता स्थापित करनेके लिये ध्यानकी आवश्यकता होती है, क्योंकि गीता (२।६५)में कहा गया है—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

चित्त-विशिष्ट चेतनाको ही जीव कहते हैं। ज्ञान, इच्छा और संकल्पके समुच्चयके साथ सक्रिय चेतना ही चित्त है। सांख्य और योगके आचार्य अन्तःकरणके तीन भेद मानते हैं—अहंकार, बुद्धि और चित्त। परंतु वेदान्तके आचार्य अन्तःकरणके चार भेद मानते हैं—अहंकार, बुद्धि, चित्त और मन। कार्य-भेदसे इनके अलग-अलग नाम हो जाते हैं। साधारण बोलचालकी भाषामें चित्तके स्थानपर मन शब्दसे भी काम लिया जाता है। न्यायशास्त्रमें महर्षि गौतमने भी ऐसा ही प्रयोग किया है। उन्होंने नौ द्रव्य गिनाये हैं—पृथ्वी, अप् (जल), तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। वृत्तियोंके समूह अथवा निरन्तर प्रवाहका नाम ही चित्त है। अहंकारका अर्थ भी यहाँ घमण्ड नहीं है, 'मैं-पन' की अनुभूति है, बुद्धि निश्चयात्मिका है, संकल्प-विकल्पात्मक मन है। इस प्रकार एक ही अन्तःकरणके कार्य-भेदसे अलग-अलग नाम हो जाते हैं।

चित्तकी वृत्तियाँ थमी हुई जबतक एक-रस-प्रवाह बहती रहें, तबतक तो कोई हानि नहीं है। शान्त नदीकी धाराकी तरह इन्हें बहना चाहिये, पर कभी-कभी इनमें तरंगें उठने लगती हैं, वायु आदिकी प्रबलतासे शान्त नदी जैसे चञ्चल हो उठती है, उसी तरह बाहरके प्रलोभनोंके कारण चित्त भी उद्धिग्न हो उठता है। यह विक्षेप ही चित्तकी अशुद्धि है। उस समय यह आवश्यक हो जाता है कि इसे शान्त स्थितिमें लाया जाय। इसके लिये दृढ़तासे योगसाधना तथा ध्यानका अभ्यास करना पड़ता है। धैर्य, श्रद्धा और निष्ठासे दीर्घसमयतक निरन्तर अभ्यास करनेपर ही साधकको सिद्धि प्राप्त होती है।

विषयोंकी प्यास ही तृष्णा है। ये तृष्णाएँ ही चित्तकी वृत्तियोंको चारों ओर दौड़ाती रहती हैं। असंयमित मनका लक्षण है विषयोंमें सुखकी खोज करना। असंयमित मन विषयोंकी संवेदनाओंसे विचलित और क्षुब्ध हो उठता है और

अपनी सम्पूर्ण शक्तिको विनष्ट कर डालता है तथा मनुष्यके संगठित व्यक्तित्वके सामञ्जस्यको भी भङ्ग कर देता है। वह अपनी चञ्चलता और अस्थिरताके कारण समस्त विरोधों तथा अवरोधोंको तोड़ता हुआ पुनः-पुनः विषयोंके चिन्तनमें ही लगा रहता है। इसलिये मनकी इस बहिर्मुखी प्रवृत्तिको अवरुद्ध करनेका उपाय उसके प्रकाशक चैतन्यस्वरूप आत्माका अनुसंधान करना है। विषयोंकी उपयोगिताका विवेकपूर्ण मूल्याङ्कन करनेसे मन विषयोंसे हटकर आत्मामें स्थिर हो जाता है। परिच्छिन्न विषय मनको क्षुब्ध करते हैं, जब कि आनन्दस्वरूप आत्मा उसे अनन्त आनन्दसे परिपूर्ण कर देता है। वैषयिक इच्छाओंके कारण चञ्चल होनेवाला मन जब ध्यान आदि योगसाधनाओंसे शान्त होता है, तब उस स्थिर मनमें एक ही अखण्ड ब्रह्माकार-वृत्ति बनी रहती है। इस शाश्वत सुखको प्राप्त कर लेनेपर साधक पुनः संसारमें प्राप्त दुःखोंके जालमें नहीं उलझता। इस आनन्दके अनुभवसे जीवन तनाव, दुःख, कष्ट और शोकपूर्ण परिस्थितियोंमें भी निश्चल बना रहता है, जिसमें स्थित होनेपर वह महान् क्लेशोंसे भी विचलित नहीं होता—‘यस्मिन् स्थितो हि दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।’ इस प्रकार परिच्छिन्न जीवनके दुःखसे मुक्ति पानेके लिये आनन्दस्वरूप आत्मामें स्थित होनेकी आवश्यकता है। वास्तविक सुख इन्द्रियातीत होता है। योगसाधनाद्वारा मनुष्य अपने स्वरूपको खोजकर सुखी जीवनका रहस्य जान लेता है। क्षणिक विषय-सुखोंसे इन्द्रियों तथा मनकी पूर्ण तृप्ति नहीं होती, इस आत्मानन्दके अतुलनीय दिव्य रसका आस्वादन करके वह परितृप्त हो जाता है। स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मामें ही स्थायी एवं सच्चा सुख तथा आनन्द है, विषयोंमें नहीं। गहन शान्ति और आनन्द ही आत्माका स्वरूप है, क्योंकि आत्मामें शरीर, मन और बुद्धिकी उत्तेजना, चञ्चलता और विक्षेपका सर्वथा अभाव है।

तत्त्वसाक्षात्कारके लिये तथा चित्त-शुद्ध्यर्थ ध्यानसाधना नितान्त आवश्यक है। ‘ध्यै चिन्तायाम्’ धातुसे ध्यान शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातुके अनुसार ध्यान शब्दका अर्थ है—‘चिन्तन’। ध्यान या चिन्तनके बिना संसारका कोई भी काम हम सफलतापूर्वक नहीं कर सकते।

चित्तका केवल ध्येयनिष्ठ होना ही ध्यान नहीं है। शरीर

और वचनका भी उसके अनुरूप होना आवश्यक है। शरीर, वाक्, मनको एक लयमें लानेके लिये कुछ सहयोगी साधनोंका अभ्यास अत्यावश्यक है। यम और नियमके पालनसे जब चित्तपरसे विषाद प्रायः हट-सा जाता है, जब शरीर आसनोद्धार साधा गया होता है, जब मन प्राणायामकी अग्निसे सुसंस्कृत और पावन हो जाता है तथा इन्द्रियाँ प्रत्याहारद्वारा वशमें की गयी हो जाती हैं, तब साधक अष्टाङ्गयोगकी, ध्यानसे पहलेकी ‘धारणा’ नामक छठी अवस्थाको प्राप्त करता है, क्योंकि प्राणायामसे श्वासके और प्रत्याहारसे इन्द्रियोंके वशमें हो जानेपर चित्तमें विक्षेपकी सम्भावना नहीं रहती, अतः वह एक स्थानपर सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है। नाभिचक्र, हृदयकमल, नासिका अथवा जिह्वाका अग्रभाग, मूर्द्धा या कोई बाह्य पदार्थ (इष्ट देवताकी मूर्तियाँ आदि) — इनमेंसे कोई भी धारणाका विषय हो सकता है। धारणाके विषयोंका कोई अन्त नहीं है।

धारणामें चित्त जिस वृत्तिमात्रसे ध्येयमें लगता है, जब वह वृत्ति इस प्रकार समान-प्रवाहसे लगातार उदय होती रहे कि दूसरी कोई और वृत्ति बीचमें न आवे, तब तैलधारावत् अखण्ड प्रवाह तथा मनके निर्विषय होनेको ही ‘ध्यान’ कहते हैं।

जबतक ध्याता, ध्यान, ध्येय-रूप त्रिपुटीसे भान होनेवाली विषयाकार-वृत्तिका समान-प्रवाहसे बहना प्रारम्भ न हो अर्थात् वृत्तिके बीच-बीचमें अन्य वृत्तियाँ भी आती रहें, तबतक वह धारणा कहलायेगी। जब यह त्रिपुटीसे भान होने-वाली विषयाकार-वृत्ति व्यवधानरहित हो जाय अर्थात् अन्य विजातीय वृत्तियाँ बीच-बीचमें न आवें, किंतु सदृश-वृत्तियोंका प्रवाह निरन्तर बना रहे, तब वह ‘ध्यान’ कहलाता है। एकतान-गति होनेपर ही चित्तकी शुद्धि और चित्तवृत्तियोंका निरोध होता है, तभी वस्तुओंका यथार्थ स्वरूप समझमें आता है और एक सुनिश्चित संशयरहित ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

योगी जब अपने ध्यानके अत्युच्च शिखरपर पहुँचता है, जहाँ ज्ञाता और ज्ञेयमें, ध्याता और ध्येयमें द्वैतभाव नहीं रहता, वे कर्पूर-ज्योतिके समान परस्परमें विलीन हो जाते हैं, केवल ध्येयमात्र ही भासता है और ध्यानका अपना स्वरूप भी लुप्त-सा हो जाता है, तब उसे समाधि कहते हैं। इस समाधि अथवा समाधानदशामें लक्ष्य-ही-लक्ष्य स्फुरित होता है।

इसलिये ध्यान समाधिका अव्यवहित पूर्ववर्ती साधन है—

मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥

‘सम्यगाधीय एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो

(गौडपादकारिका)

यत्र स समाधिः ।’

अर्थात् संसारमें जो कुछ भी जड चैतन्यरूप द्वैत दिखायी

आनन्दकी चरमावस्था परम शान्ति समाधिके द्वारा ही प्राप्त होती है, किंतु समाधिके द्वारा प्राप्त उस आनन्दका वर्णन नहीं हो सकता, उसकी केवल अन्तःकरणसे अनुभूति की जा सकती है—‘स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते’—समाधिमें—आत्मब्रह्ममें चित्तवृत्तिके लीन हो जानेसे ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य कुछ भी अनुभूत नहीं होता, सब वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं। अन्तमें चित्तका भी विलय हो जाता है—

दे रहा है, वह सब मनके कारण है। जब मन समाप्त हो जाता है, तब भेद-भाव भी नष्ट हो जाते हैं और परम शान्तिकी अनुभूति होती है। जैसे जब हम गाढ़ निद्रासे जागते हैं, तो परम शान्तिका अनुभव करते हैं, क्योंकि उस समय मन भी सो जाता है। यह आत्म-साक्षात्कार ही जीवनका चरम शिखर तथा योगका सर्वोच्च लक्ष्य है, जिसे अनुभूत कर जीव कृतकृत्य हो जाता है।

मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत् किञ्चित् सचराचरम्।

श्रीहनुमत्प्रोक्त मन्त्रराजात्मक रामस्तवका भावार्थ

अपने मुख्य शत्रु रावणके विनाशके लिये जिन्होंने कपिराज सुग्रीवादि तिर्यक्-योनिमें उत्पन्न वानर-भालुओंकी सेना संगठित की (और सैन्य-शिक्षाके द्वारा उन्हें सुप्रबुद्ध कर लंकापर विजय प्राप्त कर ली), उन अति उग्र भगवान् रामको मैं नमस्कार करता हूँ। समुद्र-तटपर आये विभीषणको, केवल एक बार ‘मैं आपकी शरण हूँ’—ऐसा कहनेपर जिन्होंने लंका आदिके राज्यसहित अपार वैभवको प्रदान किया, उन महावीर श्रीरामको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वव्यापक हैं, सबसे महान् हैं और देवता, ऋषि-मुनियोंसे भी पूजित हैं तथा महान् कृपा-सुधाके मूर्तिमान् स्वरूप हैं और उस कृपा-सुधासे जटायुतकको भी जिन्होंने संसिक्तकर मुक्त कर दिया, उन महाविष्णुस्वरूप भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ। अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य आदि तेजस्वी ज्योतिष्युज्ज्वल जिनके तेजसे ही प्रकाशित एवं प्रज्वलित होते हैं और जो स्वयं अपने तेजसे प्रकाशित होते हैं, उन प्रज्वलित तेजोमय भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ। रणस्थलमें खर-दूषण, त्रिशिरा आदि राक्षसोंसे युद्ध करते समय जिन्होंने अपनी लीलासे अपना मुखमण्डल सभी ओर दिखलाया (और सबका नाश कर दिया), उन सर्वतोमुख भगवान् रामकी मैं वन्दना करता हूँ। शरणमें आते ही जो मनुष्योंके सामान्य मोहमय मनुष्यभावको नष्टकर उन्हें लोकोत्तर ज्ञान एवं विशिष्ट दिव्य शक्तियोंसे सम्पन्न कर देते हैं और जो सम्पूर्ण विश्वमें सिंहके समान बली हैं, उन नरसिंह भगवान् रामको मैं नमन करता हूँ। जिनसे अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, यम आदि सभी भयभीत रहते हैं और पाप तो उनके भयसे सदा ही दूर भागता है, उन भीषण रामको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अपने भक्तोंकी किसी योग्यता आदिकी अपेक्षा किये बिना ही अपने उदार-स्वभावके कारण सदा सब कुछ देते ही रहते हैं और जो नित्य मङ्गलस्वरूप हैं, उन परम भद्र-स्वरूप सौजन्यमूर्ति भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अपने भक्तोंके मृत्युका समूलोच्छेदन कर उसकी सारी अभिलाषा पूर्ण कर देते हैं, इस सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकि जो पहले कभी व्याधका काम कर रहे थे, परम प्रमाण हैं। ऐसे मृत्युके भी मृत्यु भक्तवत्सल भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके चरण-कमलोंमें प्रणाम करते ही अधम पुरुष भी अति उत्तम पुरुष बन जाता है, उन जन्मादि षड्विकारोंसे मुक्त, सभी देवताओंके द्वारा वन्दनीय भगवान् रामकी मैं वन्दना करता हूँ। मैं (हनुमान्) ब्रह्मैकात्म्य-भावका परित्याग कर दास्यभाव अर्थात् सेव्य-सेवककी भावनासे अहर्निश लक्ष्मणसहित श्रीसीतारामकी उपासना करता हूँ। भगवान् श्रीरामके भक्तोंके लिये यमदूत भी सदाके लिये किंकर (सेवक—दास) बन जाते हैं, उसके लिये दसों दिशाएँ मङ्गलमयी हो जाती हैं और सभी सिद्धियाँ उसके चरणोंमें लोटती हैं। हनुमान्जीद्वारा प्रोक्त इस मन्त्रराजात्मक स्तोत्रका जो पाठ करता है, वह भगवान् श्रीरामका भक्त हो जाता है।

[मूल श्लोक प्रथम पृष्ठपर देखें]

गीतामें योग और भोग

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रभुणा सह सम्बन्धो जीवानां योग उच्यते ।

प्रकृत्या कृतसम्बन्धः प्राणिनां भोग उच्यते ॥

जीवका परमात्माके साथ जो स्वतःसिद्ध सम्बन्ध है, वह 'योग' है और वस्तु, व्यक्ति, क्रिया, पदार्थ, घटना, परिस्थिति आदि प्राकृत वस्तुओंके साथ जो माना हुआ सम्बन्ध है, वह 'भोग' है। संसारके रागका त्याग होनेसे 'योग' होता है और संसारमें राग होनेसे 'भोग' होता है। योग नित्य और भोग अनित्य है।

भोजन केवल निर्वाहबुद्धिसे किया जाय; भोजनके पदार्थमें राग न हो, खिंचाव न हो, तो ऐसे भोजनसे भी 'योग' हो जाता है। परंतु शरीर पुष्ट हो जाय, बल अधिक हो जाय—इस दृष्टिसे तथा स्वादकी दृष्टिसे भोजन करनेसे, भोजनका रस लेनेसे 'भोग' होता है। तात्पर्य है कि राग-रहित होकर, निर्लिप्ततापूर्वक भोजन करनेसे पुराना राग मिट जाता है और स्वादबुद्धि, सुखबुद्धि न होनेसे नया राग पैदा नहीं होता, जिससे 'योग' हो जाता है। रागपूर्वक भोजन करनेसे पुराना राग पुष्ट होता रहता है और स्वादबुद्धि, सुखबुद्धि होनेसे नया राग पैदा होता रहता है, जिससे 'भोग' होता है।

सांसारिक वस्तु, पदार्थ आदिके रागके त्यागसे जो सुख होता है, उससे योग होता है (१२।१२) और भोगमें जो तात्कालिक सुख होता है, उससे बन्धन होता है (१८।३८)।

एक कहावत है—'एक गुणा दान, सहस्रगुणा पुण्य ।' फलकी इच्छासे एक रुपया दान किया जाय तो हजारगुणा पुण्य होता है अर्थात् हजार रुपयोंके साथ सम्बन्ध जुड़ता है। अतः ऐसा दान सम्बन्धजन्य भोग पैदा करता है। तात्पर्य है कि सकामभावपूर्वक दिये हुए दानसे वर्तमानमें वस्तु आदिका तात्कालिक सम्बन्ध-विच्छेद दीखनेपर भी परिणाममें वस्तु आदिका सम्बन्ध बना रहता है (२।४२—४४)। दान देना कर्तव्य है—इस भावसे, प्रत्युपकारकी भावनासे रहित होकर अर्थात् निष्कामभावपूर्वक दान दिया जाय तो वस्तु आदिसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है (१७।२०); क्योंकि यह त्याग है। त्यागका अनन्तगुणा पुण्य होता है। त्यागसे महान् पवित्रता आती है। त्यागसे तत्काल योग होता है (६।२३)। योगमें

संसारका वियोग है (६।२३) और भोगमें संसारका योग है (५।२२)।

दूसरोंको निष्कामभावसे सुख पहुँचानेके लिये, उनका हित करनेके लिये ही उनके साथ जो सम्बन्ध जोड़ा जाता है, उससे 'योग' होता है; क्योंकि उससे अपने राग, सुख, आराम आदिका त्याग होता है। परंतु किसी वस्तु, व्यक्तिसे सुख लेनेके लिये उसके साथ जो सम्बन्ध जोड़ा जाता है, उससे 'भोग' होता है। वस्तु, व्यक्तिसे रागपूर्वक सम्बन्ध जोड़नेसे परमात्माके नित्य-सम्बन्धका अनुभव नहीं होता।

वस्तु, व्यक्तिसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर एक सुख होता है। अगर साधक उस सुखका भोग न करे तो 'योग' हो जायगा। अगर वह उस सुखका भोग करेगा, उस सुखमें राजी हो जायगा तो योग नहीं होगा, प्रत्युत 'भोग' हो जायगा।

अगर साधक भोगबुद्धिका सर्वथा त्याग कर दे तो सभी साधनोंसे 'योग' (परमात्माके नित्य-सम्बन्धका अनुभव) हो जाता है। जैसे—कर्मयोगमें केवल सृष्टिचक्रकी मर्यादाको सुरक्षित रखनेके लिये, केवल कर्तव्य-परम्पराकी रक्षाके लिये ही निष्कामभावपूर्वक कर्तव्य-कर्म करनेसे कर्मोंका प्रवाह केवल संसारकी तरफ हो जाता है और स्वयंका कर्मोंसे सम्बन्ध-विच्छेद होकर, भोगका त्याग होकर परमात्माके साथ योग हो जाता है (४।२३)।

ज्ञानयोगमें सत्-असत्के विवेक-विचारसे वस्तु, व्यक्ति, क्रिया आदि परिवर्तनशीलसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है, जिससे परमात्माके साथ योग हो जाता है अर्थात् परमात्माके साथ अपनी स्वतःसिद्ध अभिन्नताका अनुभव हो जाता है (१३।२३, ३४)।

भक्तियोगमें सम्पूर्ण क्रिया, पदार्थ आदिको भगवान्का ही समझकर भगवान्को अर्पित किया जाता है, जिससे उन क्रिया, पदार्थ आदिसे सम्बन्ध-विच्छेद होकर भगवान्के साथ योग हो जाता है अर्थात् भगवान्में आत्मीयता हो जाती है (९।२७-२८)।

ध्यानयोगमें निरन्तर परमात्मामें मन लगाते-लगाते जब मन संसारसे सर्वथा उपराम हो जाता है, केवल ध्येय वस्तु रह-

जाती है, तब परमात्माके साथ योग हो जाता है, अपने स्वरूपका अनुभव हो जाता है (६।२०, २८)।

अष्टाङ्गयोगमें क्रमशः यम, नियम आदि आठों अङ्गोंका निष्कामभावपूर्वक पालन किया जाय तो उससे संसारके सम्बन्धका त्याग हो जाता है और परमात्माके साथ योग हो जाता है (५।२७-२८)। परंतु उसमें साधकको विशेष सावधानी रखनी चाहिये कि कहीं वह सिद्धियोंमें न फँस जाय। अगर वह सिद्धियोंमें फँस जायगा तो भोग होगा, योग नहीं होगा।

तात्पर्य यह है कि किसी भी मार्गसे चलनेवाले साधकको

व्यवहार-अवस्थामें अथवा साधन-अवस्थामें हरदम सावधान रहना चाहिये। उसको किसी भी अवस्थामें वस्तु, व्यक्ति, क्रिया, पदार्थ, योग्यता, स्थिरता आदिका सुख नहीं लेना चाहिये; क्योंकि सुख लेनेसे भोग हो जायगा, योग नहीं होगा (१४।६)।

सात्त्विक सुख सङ्गसे, राजस सुख कर्मोंकी आसक्तिसे और तामस सुख निद्रा, आलस्य एवं प्रमादसे बाँधता है (१४।६-८)। अतः साधक सावधानीपूर्वक सात्त्विक, राजस और तामस सुखसे बँधे नहीं, उसका सङ्ग न करे, तो फिर उसका परमात्माके साथ योग हो जायगा। ('गीतादर्पण'से)

सूर्यविज्ञान

(महामहोपाध्याय आचार्य पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम०ए०)

[विशेषाङ्क पृ० २५४ से आगे]

(ग) सूर्यविज्ञानका रहस्य

यद्यपि कालधर्मके कारण हम सौरविज्ञान या सावित्री-विद्याको भूल गये हैं, तथापि यह सत्य है कि प्राचीन कालमें यही विद्या ब्राह्मण-धर्मकी और वैदिक साधनाकी भित्तिस्वरूप थी। सूर्यमण्डलतक ही संसार है—सूर्यमण्डलका भेद किये बिना मुक्ति नहीं मिल सकती यह बात ऋषिगण जानते थे। वस्तुतः सूर्यमण्डलतक ही वेद या शब्दब्रह्म है, उसके बाद सत्य या परब्रह्म है।

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।

यह बात जो लोग कहा करते, वे जानते थे कि शब्दब्रह्मका अतिक्रमण किये बिना या सूर्यमण्डलको लाँघे बिना सत्यमें नहीं पहुँचा जाता। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥
द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः।
दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्क प्रविष्टः ॥

(११।१२।२१-२२)

'यह कर्मात्मक संसारवृक्ष है—जिसके दो बीज, सौ मूल, तीन नाल, पाँच स्कन्ध, पाँच रस, ग्यारह शाखाएँ हैं,

जिसमें दो पक्षियोंका निवासस्थान है, जिसके तीन वल्कल और दो फल हैं'—यह संसार-वृक्ष सूर्यमण्डलपर्यन्त व्याप्त है।' श्रीधर स्वामी और विश्वनाथ दोनोंने कहा है—**अर्क प्रविष्टः सूर्यमण्डलपर्यन्तं व्याप्तः। तन्निर्भिद्य गतस्य संसाराभावात् ॥**

प्रकृतिका रहस्य जाननेके लिये यह सूर्य ही साधन है। श्रुतिमें आया है—

हिरण्यमेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽहम् ॥

(मैत्री-उपनिषद् ६।३५)

सूर्यसे ही चराचर जगत् उत्पन्न होता है, यह श्रुतिने स्पष्ट रूपमें निर्देश किया है। मैत्री-उपनिषद् (६।३५) में लिखा है कि प्रसवधर्मके कारण ही सूर्यका 'सविता' नाम सार्थक हुआ है। (सवनात् सविता)। बृहद्योगियाज्ञवल्क्यमें स्पष्ट लिखा है—

सविता सर्वभावानां सर्वभावांश्च सूर्यते।
सवनात् प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते ॥

(९।५५-५६)

१-बीज=पुण्य-पाप। मूल=वासना। शत=असंख्य। नाल=गुण। स्कन्ध=भूत। रस=शब्दादि विषय। शाखा=इन्द्रिय। फल=सुख-दुःख। सुपर्ण या पक्षी=जीवात्मा और परमात्मा। नीड=वासस्थान। वल्कल=धातु अर्थात् वात, पित्त और श्लेष्मा।

सूर्योपनिषद्में सूर्यके जगत्की उत्पत्तिका हेतु होनेका वर्णन आया है—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।

सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

आचार्य शौनकने बृहदेवतामें उच्च स्वरसे कहा है कि एकमात्र सूर्यसे ही भूत, भविष्य और वर्तमानके समस्त स्थावर और जड़म पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं। यही प्रजापति तथा सत् और असत्के योनिस्वरूप हैं—यह अक्षर, अव्यय, शाश्वत ब्रह्म हैं। ये तीन भागोंमें विभक्त होकर तीन लोकोंमें वर्तमान हैं—समस्त देवता इनकी रश्मिमें निविष्ट हैं—

भवद् भूतं भविष्यच्च जङ्गमं स्थावरं च यत् ।

अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः ॥

असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः ।

तदक्षरं चाव्ययं च यच्चैतद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥

कृत्वैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति ।

देवान् यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु ॥

सूर्यसिद्धान्त नामक ज्योतिष ग्रन्थमें लिखा है कि ये सब जगत्के आदि हैं, इस कारण ये आदित्य हैं, जगत्को प्रसव करते हैं, इस कारण सूर्य और सविता हैं—ये तमोमण्डलके उस पार परम ज्योतिःस्वरूप हैं—

आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते ।

परं ज्योतिः तमःपारे सूर्योऽयं सवितेति च ॥

यह जो परम ज्योतिकी बात कही गयी, वह शब्दब्रह्ममय मन्त्रज्योति है—यही अखण्ड अविभक्त प्रणवात्मक वेदस्वरूप है—इसीसे विभक्त होकर ऋक्, यजुः और सामरूप वेदत्रयका आविर्भाव होता है। सूर्यपुराणमें इसीलिये स्पष्टतया कहा गया है—

नत्वा सूर्यं परं धाम ऋग्यजुःसामरूपिणम् ।

—इत्यादि ।

विद्यामाधवकारने भी इसीलिये सूर्यको 'त्रयीमय' और 'अमेयांशुनिधि' के नामसे निर्देश किया है और कहा है कि ये तीनों जगत्के 'प्रबोधहेतु' हैं। उन्होंने कहा है कि सूर्यके बिना 'सर्वदर्शित्व' सम्भव नहीं—इसीसे मानो शङ्करने उन्हें नेत्ररूपसे धारण किया है। सूर्यसे ही सब भूतोंके चैतन्यका

उन्मेष और निमेष होता है, यह श्रुतिमें भी लिखा है—

योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोदेति

असौ योऽस्तमेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायास्तमेति ।

विष्णुपुराणके याज्ञवल्क्यकृत सूर्यस्तोत्र (अंश ३, अध्याय ५) में सूर्यको 'विमुक्तिका द्वार', 'ऋग्-यजुःसामभूत', 'त्रयीधामवान्', 'अग्नीषोमभूत', 'जगत्के कारणात्मा' और 'परम सौषुम्नतेजोधारणकारी' कहकर क्यों वर्णन किया गया है, यह बात अब समझमें आवेगी। अग्नि और सोम मूलतः सूर्यसे अभिन्न हैं, यह श्रुतिसे भी मालूम होता है।

उद्यन्तं वादित्यमग्निरनुसमारोहति सुषुम्नः सूर्यरश्मिः

चन्द्रमा गन्धर्वः ।

श्रुतिमें आया है कि सूर्य पूर्वाह्णमें ऋक्द्वारा, मध्याह्णमें यजुःद्वारा और अस्तकालमें सामद्वारा युक्त होते हैं—

ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते

यजुर्वेदे तिष्ठति मध्य अह्नः ।

सामवेदेनास्तमये

महीयते

वेदैरसून्यस्त्रिभिरेति

सूर्यः ।

सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं कि ऋक् ही सूर्यका मण्डल और यजुः तथा साम उनकी मूर्ति हैं—यह कालात्मक, कालकृत, त्रयीमय भगवान् हैं—

ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्यस्य मूर्तिर्यजुषि च ।

त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद् विभुः ॥

वस्तुतः प्रणव या ॐकार या उद्गीथ ही सूर्य हैं—ये नादब्रह्म हैं, ये निरन्तर रव करते हैं, इस कारण 'रवि' नामसे विख्यात हैं। छान्दोग्योपनिषद् (१।४।१—५) में कहा गया है कि त्रयीविद्या या छन्दोरूप तीन वेदोंने इस उद्गीथको आवृत कर रखा है। इसके बाहर मृत्यु-राज्य है। देवताओंने मृत्यु-भयसे डरकर सबसे पहले वेदकी शरण ग्रहण की और छन्दों-द्वारा अपनेको आच्छादित किया—अपनेको गोपन किया या अपनी रक्षा की तथापि मृत्युने उन लोगोंको देख लिया था—जिस तरह जलके अंदर मछली दिखायी पड़ती है, उसी तरह। जलके दृष्टान्तसे मालूम होता है कि वेदत्रय जलवत् स्वच्छ आवरण है। मधुविद्यामें भी वेदको 'आपः' = जल कहा गया है। एक हिसाबसे यही पुराणवर्णित कारणवारि है। देवताओंने उस समय वेदसे निकलकर नादका आश्रय ग्रहण

किया। इसीसे वेद-अन्तमें नादका आश्रय लिया जाता है। यही अमर अभय पद है। उसके बाद (छा० १।५।१—५) स्पष्ट कहा गया है कि उद्गीथ या प्रणव ही सूर्य हैं—ये सर्वदा नाद करते हैं। इस प्रणव-सूर्यकी दो अवस्थाएँ हैं। एक अवस्थामें इनकी रश्मिमाला चारों ओर विकीर्ण हुई है^१, दूसरी अवस्थामें समस्त रश्मियाँ संहत होकर मध्यविन्दुमें विलीन हुई हैं। यह द्वितीय अवस्था ही प्रणवकी कैवल्य या शुद्धावस्था है। ऋषि कौषीतक प्राचीन कालमें इसके उपासक थे। प्रथम अवस्था प्रणव-सूर्यकी सृष्ट्युत्पन्न अवस्था है। उन्होंने अपने पुत्रसे प्रथम उपासनाकी बात कही। उद्गीथ वा प्रणव ही अधिदेवरूपमें सूर्य हैं, यह कहकर अध्यात्मदृष्टिसे यही प्राण है, यह समझाया गया है।

प्रश्नोपनिषद् (५।१-७) में लिखा है कि ओंकारका अभिध्यान प्रयाणकालतक करनेसे अभिध्यानके भेदके कारण भिन्न-भिन्न लोक अधिकृत होते हैं (लोकजय)। यह ओंकार ही पर और अपर ब्रह्म है। एक मात्राके अभिध्यानके फलस्वरूप जीव उसके द्वारा संवेदित होकर शीघ्र ही जगतीको यानी पृथिवीको प्राप्त होता है। उस समय ऋक् उसको मनुष्यलोकमें पहुँचा देते हैं। वहाँ वह तपस्या, ब्रह्मचर्य और श्रद्धाद्वारा सम्पन्न होकर महिमाका अनुभव करता है। द्विमात्राके अभिध्यानके फलसे मनःसम्पत्ति उत्पन्न होती है—उस समय यजुः उसको अन्तरिक्षमें ले जाते हैं। वह सोमलोकमें जाता है और विभूतिका अनुभव कर पुनरावर्तन करता है। त्रिमात्राके—अर्थात् ओं-अक्षरके—द्वारा परमपुरुषके अभिध्यानके प्रभावसे तेजः या सूर्यमें सम्पत्ति उत्पन्न होती है, उस समय साधक सूर्यके साथ तादात्म्य प्राप्त करता है। जिस तरह साँपकी बाह्य त्वचा या केंचुल खिसक पड़ती है, सूर्य-मण्डलस्थ आत्मा भी उसी तरह समस्त पापों या मलसे विमुक्त

हो जाता है। वहाँसे साम उसे ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं। साधक सूर्यसे—‘जीवघन’से—परात्पर पुरमें सोये हुए पुरुषका दर्शन करता है। तीनों मात्राएँ पृथक्-पृथक् विनश्वर और मृत्युमती हैं, परंतु एकीभूत होनेपर ये ही अजर और अमरभावको प्राप्त करानेवाली हैं।

इससे मालूम होता है कि वेदत्रय पृथक् रूपमें लोकत्रयको प्राप्त करानेवाले हैं—ऋक् भूलोकको, यजुः अन्तरिक्षलोकको और साम स्वर्गलोकको प्राप्त करानेवाला है। ये तीनों लोक पुनरावर्तनशील हैं। ये ही प्रणवकी तीन मात्राएँ हैं। वेदत्रयको घनीभूत करनेपर ही ओंकाररूप ऐक्यका स्फुरण होता है। उसके द्वारा पुरुषोत्तमका अभिध्यान होता है। वेदत्रय जब सूर्य हैं एवं प्रणव जब वेदका ही घनीभूत प्रकाश है, तब सूर्य प्रणवका ही बाह्य विकास है, इसमें कोई संदेह नहीं।

हमारे ऋषियोंका कहना है कि शुद्ध आत्मतेज अंशतः सूर्यमण्डल भेदकर जगत्में उतर आता है। शुद्ध भूमिसे जगत्में अवतीर्ण होनेके लिये और जगत्से शुद्ध धाममें जानेके लिये सूर्य ही द्वारस्वरूप हैं। पिथागोरस (Pythagoras) ने कहा है कि सूर्य एक तेजोधारक Lens मात्र है, इसीमेंसे होकर आत्मज्योतिः जगत्में उतरती है। प्लेटो (Plato) का कहना है कि ज्योतिः (Kabalist) और अन्यान्य तत्त्वदर्शियोंके मतसे परम पदार्थका प्रथम विकास है। अपनी रश्मिसे ईश्वरने जो तेज प्रज्वलित किया है, वही सूर्य है। सूर्य प्रकाश या तापकी प्रभा नहीं है, बल्कि Focus है—यह एक Lens मात्र है, जिसके प्रभावसे आदिम ज्योतिका रश्मिसमूह स्थूल (Material) बन जाता है, हमारे सौर-जगत्में एकत्र होता है और नाना प्रकारकी शक्ति उत्पन्न करता है।

सूर्यरश्मियाँ अनन्त हैं—जातिमें और संख्यामें अनन्त हैं। परंतु मूल प्रभा एक ही है—यह शुक्लवर्ण है। यही मूल

१-ये रश्मियाँ ठीक रास्तोंके समान हैं। जिस तरह रास्ता एक गाँवसे दूसरे गाँवतक फैला रहता है, उसी प्रकार सब रश्मियाँ भी इहलोकसे परलोकपर्यन्त फैली हुई हैं। इनकी एक सीमापर सूर्यमण्डल है और दूसरी सीमापर नाडीचक्र। जिस समय सुषुप्ति-कालमें जीव इस नाडीके अंदर प्रवेश करता है, उस समय स्वप्न नहीं रहता, शान्ति उत्पन्न होती है। यह तेजःस्थान है। देहत्यागके बाद जीव इन सब रश्मियोंका अवलम्बन लेकर, ओंकारभावनाकी सहायतासे ऊपर उठता है। संकल्पमात्रसे ही मनमें वेग होता है और उसी वेगसे सूर्यपर्यन्त उत्थान होता है। सूर्य ब्रह्माण्डके द्वारस्वरूप हैं। ज्ञानी इस द्वारको भेदकर सत्यमें और अमरधाममें पहुँच सकते हैं, अज्ञानी नहीं पहुँच सकते। हृदयसे चारों ओर असंख्य नाडियाँ या पथ फैले हुए हैं, केवल एक सूक्ष्म पथ ऊपर मूर्धाकी ओर गया हुआ है। इसी सूक्ष्म पथसे चल सकनेपर सूर्यद्वार अतिक्रम किया जाता है। अन्यान्य पथोंसे चलनेपर भुवनकोशमें ही आबद्ध रहना पड़ता है। यद्यपि भुवनकोशका केन्द्र सूर्य होनेके कारण समस्त भुवन एक प्रकार सौरलोकके ही अन्तर्गत है तथापि केन्द्रमें प्रविष्ट न हो सकनेके कारण सौरमण्डलके बाहर जाना असम्भव हो जाता है।

शुक्लवर्ण लाल, नील प्रभृति विभिन्न वर्णोंके रूपमें एवं लाल, नील इत्यादिके परस्पर मिलनेके कारण और भी विभिन्न उपवर्णोंके रूपमें प्रकाशित होता है। शुक्लसे सर्वप्रथम लाल, नील प्रभृति प्रथम स्तरका आविर्भाव होता है। शुक्लसे अतीत जो वर्णातीत तत्त्व है, उसके साथ शुक्लका संघर्ष होनेसे इस प्रथम भूमिका विकास होता है। यह अन्तःसंघर्षका फल है। यह वर्णातीत तत्त्व ही चिद्रूपा शक्ति है। इस प्रथम स्तरसे परस्पर संयोग या बहिःसंसर्ग होनेके कारण द्वितीय स्तरका आविर्भाव होता है। आपेक्षिक दृष्टिसे पहली शुद्ध सृष्टि और दूसरी मलिन सृष्टि है।

दूसरे प्रकारसे भी यही बात मालूम होती है। ब्रह्म एक और अखण्ड है। ये अविभक्त रहते हुए भी पुरुष और प्रकृतिरूपमें द्विधा विभक्त होते हैं—यही आत्मविभाग (Self-division) या अन्तःसंघर्षसे उत्पन्न स्वाभाविक सृष्टि है। निम्नवर्ती सृष्टि पुरुष और प्रकृतिके परस्पर सम्बन्ध या बहिःसंघर्षसे आविर्भूत हुई है—यही मलिन मैथुनी सृष्टि है।

सूर्यविज्ञानका मूल सिद्धान्त समझनेके लिये इस अवर्ण, शुक्लवर्ण, मौलिक विचित्र वर्ण और यौगिक विचित्र उपवर्ण सबको समझना आवश्यक है— विशेषतः अन्तःके तीनोंको।

ऊपर जो शुक्लवर्णकी बात कही गयी है, यही विशुद्ध सत्त्व है—इस सादे प्रकाशके ऊपर जो अनन्त वैचित्र्यमय रंगका खेल निरन्तर हो रहा है, वही विश्वलीला है, वही संसार है। जैसा बाहर है वैसा ही भीतर भी एक ही व्यापार है। पहले गुरुपदिष्ट क्रमसे इस सादे प्रकाशके स्फुरणको प्राप्त करके उसके ऊपर यौगिक विचित्र उपवर्णोंके विश्लेषणसे प्राप्त मौलिक विचित्र वर्णोंको एक-एक करके अलग-अलग पहचानना होता है। मूल वर्णको जाननेके लिये सादेकी सहायता अत्यावश्यक है। क्योंकि जिस प्रकाशमें रंग पहचानना है, वह प्रकाश यदि स्वयं रंगीन हो तो उसके द्वारा ठीक-ठीक वर्णका परिचय पाना सम्भव नहीं। रंगीन चश्मेके द्वारा जो कुछ दिखायी देता है वह दृश्यका रूप नहीं होता, यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। (क्रमशः)

योगकी एक सफल उपलब्धि—परकाया-प्रवेश

(आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम् ए०, साहित्यरत्न)

सिद्ध योगी जब अपनी योग-साधनाके बलसे जीते-जी किसी दूसरेके मृत या जीवित शरीरमें सूक्ष्मरूपसे प्रवेश कर जाता है, तो उसे परकाया-प्रवेश कहते हैं। भगवान्में तो यह शक्ति स्वाभाविक ही है। उनकी उस स्थितिको आवेशावतार कहा जाता है। पतञ्जलिने 'परकाया-प्रवेश' की व्याख्या निम्न प्रकारसे की है—

'बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः।' (पा० यो० ३।३८)

धर्माधर्म सकाम कर्मरूपी बन्धनोंके कारणको शिथिल करनेसे एवं इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें चित्तको प्रवाहित करनेवाली 'चित्तवहा' नाडीके स्वरूप एवं चित्तके परिभ्रमण-मार्गको ज्ञात कर लेनेसे साधकके चित्त (सूक्ष्म शरीर) का दूसरे शरीर (जीवित शरीर) या मृत व्यक्तिके शरीरमें 'आवेश' हो जाता है। चित्तके साथ ही अन्य सभी इन्द्रियाँ भी दूसरेके शरीरमें प्रविष्ट हो जाती हैं। जैसे प्रधान मक्षिकाके पीछे अन्य सभी मक्षिकाएँ चलती हैं। दूसरेके शरीरमें प्रविष्ट हुआ योगी

अपने शरीरकी तरह उस शरीरमें वर्तता है। यही परकाया-प्रवेश है।

जीवात्माका सम्बन्ध जिस शरीरसे है, उसके स्पष्ट तीन रूप हैं—स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच तत्त्वोंसे बना हमारा यह शरीर ही स्थूल शरीर है। वाणी आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, श्रवण आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणापानादि पाँच प्राण, आकाशादि पञ्चभूत, बुद्धि, मन आदि अन्तःकरण (भीतरकी इन्द्रियाँ), अविद्या, काम और कर्म यह 'सूक्ष्म शरीर' कहा जाता है। पाश्चात्य दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकोंके अनुसार 'सूक्ष्म शरीर' में आकाश, तेज और वायु तीन ही तत्त्व माने गये हैं। इनके अनुसार प्रेतका शरीर भी इन्हीं तीन तत्त्वोंका होता है। स्थूल शरीरसे पृथक् होकर जीवात्मा (मृत्युकालके समय) इसी सूक्ष्म शरीरसे गमन करता है। भारतीय दर्शनके अनुसार तीसरा शरीर 'कारण शरीर' माना गया है।

सूक्ष्म शरीरको ही लिङ्ग-शरीर भी कहा जाता है। सूक्ष्म

शरीर पारदर्शी होता है। सूक्ष्म शरीरकी यात्रा मनके वेगके समान तीव्र होती है। दिवाल, कपाट आदि कोई व्यवधान सूक्ष्म शरीरके लिये बाधक नहीं बन सकते। पारदर्शीका यही तात्पर्य भी है। योगी सिद्धि प्राप्त करके परकाया-प्रवेश भी सूक्ष्म शरीरसे ही करते हैं। इसी प्रसंगमें यह भी जान लेना चाहिये कि हिमालयकी गुफाओंमें रहकर योग-साधना करनेवाले योगियोंमें बहुतेरे ऐसे बताये जाते हैं, जो कई बार परकाया-प्रवेश करके हजारों वर्षोंसे अपनी साधनामें लगे हैं। यत्र-तत्र प्रकाशित उल्लेखोंसे यह अवगत होता है कि अचानक मर जानेवाले (मानव) की जीवात्मा जीवनसे अतृप्तिके कारण या किसी दैवी संयोगसे सद्यः मृत किसी युवाके शरीरमें प्रवेश कर जाता है। यहाँ परकाया-प्रवेशके कुछ वृत्तान्तोंका उल्लेख किया जा रहा है—

(१)

योगवासिष्ठमें परकाया-प्रवेशका प्रसंग 'चूडाला-वृत्तान्त' में आया है। चूडाला राजरानी थीं। सती-साध्वी थीं। योग-क्रियामें भी वे पारङ्गत थीं। वह योग-क्रियाके बलपर सूक्ष्म शरीरसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और पातालमें सर्वत्र भ्रमण कर सकती थीं। योग-क्रियाद्वारा वह भूत, भविष्य-कालीन गतिविधियोंका परिज्ञान करनेमें सक्षम थीं। चूडालाका विवाह महाराज शिखिध्वजसे सम्पन्न हुआ था। महाराज शिखिध्वज विद्वान्, प्रजापालक और सत्यवादी थे, किंतु वह योगक्रियासे अनभिज्ञ थे। महारानी चूडाला पतिको भी योगक्रिया सिखानेमें सफल हो गयीं। महाराज भी महारानीके प्रयाससे योगी हो गये। अन्तमें सफल योगी बन गये। सिद्धयोगी बनकर देवतुल्य हो गये।

सिद्धयोगी होनेके पूर्व एक दिन महाराज सिद्धयोगी बननेके क्रममें रानी चूडालासे बिना पूछे जंगलमें जाकर समाधिस्थ हो गये। लम्बी समाधि लग जानेपर बहुत दिन व्यतीत हो गये। कुछ दिनोंतक महारानी चूडाला एक सेविका और एक सेवकके शरीरमें अपने सूक्ष्म शरीरको प्रवेश करारकर महाराजकी देख-भाल करती रहीं। समय बीतता गया। जब अधिक दिन बीते, तो रानीको आभास हो गया कि महाराज समाधि तोड़नेकी विधि भूल गये हैं। चूडाला राजा शिखिध्वजको समाधिसे जगानेके लिये राजाके समाधि-

स्थलपर पहुँचीं। चूडालाने अपने सूक्ष्म शरीरको राजाके स्थूल शरीरमें प्रवेश कराया और राजाको समाधि तोड़नेकी विधि समझायी। राजाकी समाधि टूटी।

जैसे कोई चिड़िया उड़कर कहीं चली जाय और उड़कर पुनः वापस अपने घोंसलेमें आ जाय, उसी प्रकार चूडालाने महाराज शिखिध्वजकी समाधि तोड़वाकर अपने सूक्ष्म शरीरको अपने स्थूल शरीरमें पहुँचा दिया। चूडाला जिस पुरुषके स्थूल शरीरके माध्यमसे अपने पति राजा शिखिध्वजकी सेवा करती रही, वह पुरुष राजसेवक 'कुम्भ' था। जब राजाकी समाधि टूटी और राजा यथावत् हो गये तो चूडाला 'सामगान' करने लगी। सामगान सुनकर राजाका ध्यान सामगानकी ओर आकृष्ट हो गया। उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं। राजाने समझा चूडाला ही कुम्भ (सेवक) के शरीरमें विराजमान है। चूडालाको अपने कार्यमें पूर्ण सफलता मिली।

(२)

आदिगुरु शंकराचार्य तो योगी थे ही। आचार्य शंकरने आचार्य मण्डन मिश्रसे शास्त्रार्थ किया था, जिसमें श्रीमण्डन मिश्र पराजित हुए। मण्डन मिश्रकी विदुषी पत्नी भारती ही उस शास्त्रार्थमें निर्णायिका बनी थीं। पतिके पराजयका निर्णय सुनाकर भारतीने आचार्य शंकरसे श्रीमण्डन मिश्रकी अर्धाङ्गिनी होनेके नाते 'कामशास्त्र' पर शास्त्रार्थका प्रस्ताव किया। आचार्य शंकर बाल-ब्रह्मचारी थे, वे कामशास्त्रकी बात क्या जानें? उन्होंने भारतीसे छः मासका समय माँगा। उन्होंने समय दे दिया। वे यह नहीं जानती थीं कि आचार्य शंकर योगी भी हैं— परकाया-प्रवेश भी जानते हैं। उधर आचार्य शंकर अपने शिष्योंके साथ एक गुफामें पहुँचे। उन्होंने शिष्योंको अपना कार्यक्रम समझाया। समाधि लगाकर सूक्ष्म शरीरके सहारे एक सद्यः मृत राजा अमरुकके शरीरमें प्रवेश कर गये। राजाको पाकर राज्यमें आनन्दकी लहर दौड़ गयी। रानियाँ आनन्दसागरमें गोता लगाने लगीं। राजाके शरीरमें स्थित आचार्य शंकरने छः मासके पूर्व ही कामशास्त्रका अध्ययन कर लिया। आचार्य शंकरने अपने सूक्ष्म शरीरको गुफामें स्थित स्थूल शरीरमें प्रवेश करा दिया। आचार्यके प्रमुख शिष्य उस स्थूल शरीरकी सावधानीपूर्वक रक्षा कर रहे थे। और तब

उन्होंने भारतीको परास्त किया, फिर मण्डन मिश्रको सुरेश्वराचार्यके रूपमें शृंगेरीपीठपर विराजित किया, जहाँ उनकी पत्नी भारतीकी प्रस्तर-प्रतिमा प्रतिष्ठित है। कहा जाता है कि स्वयं भारतीने उस मूर्तिमें प्रवेश किया। तबसे एक संन्यासी-सम्प्रदाय भारती-सम्प्रदायके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

(३)

‘टुथ’ नामक साप्ताहिक पत्रिकाके सम्पादक श्रीशिशिर-कुमार सेनने अपनी पत्रिकामें एक घटनाका उल्लेख किया था। वह घटना सन् १९३३ ई० की थी। बूडापेस्टके हंगरीके एक अभियन्ताकी कन्या मृत्यु-शय्यापर पड़ी थी। प्रत्यक्षतः वह कन्या मर चुकी थी। कुछ देर बाद सहसा उस मृत कन्याके शरीरपर विचित्र लक्षण दिखायी दिये। उसके शरीरमें स्पन्दन होने लगा, श्वास चलने लगा। कन्या उठ बैठी और इधर-उधर आश्चर्यमें पड़कर देखने लगी। वह हंगरी भाषा बोलनेवाली लड़की स्पेनकी भाषा बोलने लगी। उसने इस जन्ममें स्पेन भाषाका अध्ययन भी नहीं किया था। अपने इस जन्मके माता-पिता या परिवारके किसी भी व्यक्तिको नहीं पहचान पायी। वह नया जीवन पानेपर जो पहली बार बोली थी, उसका अनुवाद होनेपर पता चला—‘ये सम्भ्रान्त लोग मेरे प्रति अत्यन्त दयालुताका बर्ताव कर रहे हैं।’ आगे उस कन्याने अपनी स्पेनकी ही बोलीमें कहा—‘मेरा नाम सेनोरे ल्यूसिड अल्टोरेज डी० सैलवियो’ है। मैं मैड्रिडके रहनेवाले एक कारीगरकी पत्नी हूँ। मेरे चौदह बच्चे थे। मैं कुछ बीमार थी। मेरी अवस्था चालीस वर्षकी थी। कुछ दिनों पूर्व मैं मर गयी थी। अथवा कम-से-कम मैं यह समझती थी कि मैं मर रही हूँ।’ उसने आगे कहा—‘अब मैं इस अपरिचित देश (हंगरी) में आ गयी हूँ।’ ‘टुथ’ के सम्पादकके अनुसार वह कन्या पहले स्पेनी भाषाका एक अक्षर भी नहीं जानती थी। वह (उस समय) स्पेनी भाषामें गाना भी गाने लगी थी। वह कन्या मैड्रिड नगरका सुन्दर वर्णन भी कर लेती थी। इस जन्ममें वह मैड्रिड कभी भी नहीं गयी थी।

उपर्युक्त तथ्यसे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीमती सेलवियो सहसा मर गयी थीं, उनकी जीवात्मा हंगरीके उस अभियन्ताकी सद्यःमृता कन्याके मृतक शरीरमें प्रवेश कर गयी थी।

(४)

उत्तरप्रदेशके मुजफ्फरनगरके बहेड़ी गाँवकी एक सत्य घटनाका उल्लेख भक्त स्व० श्रीरामशरणदास एवं अन्य कई लेखकोंने यत्र-तत्र उपस्थित किया है। घटनाका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है— सन् १९५६ ई० में बहेड़ीके शोभाराम त्यागीकी मृत्यु ऊँटगाड़ीसे गिर जानेके कारण हो गयी। शोभाराम श्रीशंकर त्यागीके पुत्र थे। वह एक बारातमें जा रहे थे। मृतक शरीरका अन्तिम संस्कार भी कर दिया गया। उसी दिन बहेड़ीसे सुदूर गाँव रसूलपुरके गिरधारीसिंह जाटका तीन वर्षीय लड़का यशवीर चेचककी बीमारीसे मर गया। उसके शवका अन्तिम संस्कार होनेहीवाला था। सहसा उसके शरीरमें स्पन्दन होते देख उसके घरके लोग आश्चर्यचकित हो गये। थोड़ी ही देरमें यशवीर उठ बैठा। वह चारों ओर आश्चर्यपूर्वक देखने लगा। जब उससे कुछ बातें की गयीं तो उस बालकने सबको अचम्भेमें डाल दिया, उसने बताया कि ‘मैं बहेड़ीका शोभाराम त्यागी हूँ। ऊँटगाड़ीसे गिर पड़ा और पहियेके नीचे दबकर मर गया। मरकर यहाँ आ गया।’ सबको आश्चर्यमें डालकर उस तीन वर्षीय बालकने बहेड़ीके त्यागी-परिवारकी बातें, बारात जानेकी सत्यता, मरनेकी घटनाकी जाँच करानेकी स्थिति पैदा कर दी। जाँच हुई और घटना सत्य पायी गयी।

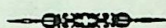
उपर्युक्त घटनाओंके उल्लेखसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदा-कदा पार्थिव शरीरसे निकलकर जीवात्मा सद्यःमृत दूसरे शरीरमें अचानक प्रवेश कर जाता है। यह तब हो पाता है, जब वह जीवात्मा अतृप्तावस्थामें ही पार्थिव शरीरसे किसी कारणवश (मृत्यु हो जानेपर) पृथक् हो जाता है। पूर्व-जीवनमें अतृप्त रहनेके कारण वह जीवात्मा दूसरे मृतक शरीरमें प्रवेश पाकर पुनर्जन्म पा जाता है या उसका ‘परकाया-प्रवेश’ हो जाता है।

(५)

प्रस्तुत घटना सन् १९३९ ई० की है। भारतपर ब्रिटिश सरकारका शासन था। ब्रिटिश सरकारकी ओरसे श्री एल्० पी० फ़ैरेल भारतीय कमाण्डके प्रधान सेनापति थे। उस समय वे पूर्व सीमापर (आसाम-वर्मा-सीमापर) तैनात थे। उसी समय उन्होंने जो दृश्य देखा उसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया था। ‘नदीका पानी बह रहा था। बहते पानीसे एक मृत युवाको,

एक अस्सी वर्षसे ऊपरकी अवस्थाका व्यक्ति जो साधु प्रतीत हो रहा था, किनारेकी ओर खींच रहा था। श्रीफैरेलने दूरवीक्षण-यन्त्रसे देखा कि वृद्ध साधु शवको खींचकर एक पेड़की आड़में ले गये। श्रीफैरेलको तब और अधिक आश्चर्य हुआ, जब थोड़ी ही देरमें मृत युवाका वही शव भीगे वस्त्रोंमें ही एक ओर जाने लगा। श्रीफैरेलने तुरंत कुछ सैनिकोंको उसे पकड़नेका आदेश दिया। सैनिकोंने दौड़कर उसे पकड़कर श्रीफैरेलके सम्मुख उपस्थित कर दिया। बहुत पूछ-ताछके बाद यह अवगत हुआ कि अस्सी वर्षकी अवस्थाके साधु

‘परकाया-प्रवेश’-पद्धतिसे मृत युवाके शरीरमें सूक्ष्म शरीरके माध्यमसे पहुँच गये हैं। सत्यताके प्रमाणमें श्रीफैरेलने वृक्षकी आड़से अस्सी वर्षकी अवस्थाके उस संतका वह अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण शव भी मँगा लिया। वह योगी श्रीफैरेलके पास उस दिन रहा और उसने अपनी अनुभूति, परकाया-प्रवेशकी योगक्रियाका रहस्य, महत्ता आदि श्रीफैरेलको बताया। यह जानकर उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई तथा भारतीय योगविद्यामें अत्यन्त श्रद्धा हो गयी। श्रीफैरेल जब रात्रिमें निद्राग्रस्त हो गये तो वे योगी किसी दिशामें अन्तर्धान हो गये।



स्मृति-वाङ्मयमें योग-निरूपण

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम्.ए., पी-एच्.डी.)

[विशेषाङ्क पृ० २४७ से आगे]

(५) बृहत्पराशरस्मृतिमें योगचर्या

कलियुगके लिये महर्षि पराशरके द्वारा निर्दिष्ट वचनोंकी ही विशेष मान्यता है। वह चाहे ज्योतिषशास्त्र हो, चाहे वार्ताशास्त्र या धर्मशास्त्र। धर्मशास्त्रमें भी इनके नामसे दो स्मृति-ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। एक पराशरस्मृति और द्वितीय बृहत्पराशरस्मृति। बृहत्पराशरस्मृतिमें प्रायः पराशरस्मृतिके सभी वचन समाहित हो गये हैं। इसमें सभी संस्कारों तथा सदाचारोंके वर्णनके अनन्तर वानप्रस्थ एवं संन्यास-आश्रमके कृत्योंका निरूपण हुआ है और उसके अन्तमें विस्तारसे साङ्गोपाङ्ग योगचर्यापर प्रकाश डाला गया है। मुख्य रूपसे प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा आदिका संक्षिप्त निदर्शन कर ध्यानयोगके अभ्यासका विस्तारसे प्रतिपादन किया गया है। इसमें कुछ गोपनीय भाषामें कुण्डलिनी-शक्तिके ध्यानका संकेत किया गया है और फिर उसीसे ब्रह्मतत्त्वकी बात बतलायी गयी है। महर्षि पराशरके अनुसार यद्यपि वेदादिके अध्ययनसे भी योगसिद्धिमें पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है तथापि सिद्ध गुरुके उपदेशसे, ईश्वरकी भक्तिसे एवं सम्यक् अभ्याससे जितनी स्थिर एवं निश्चित सहायता प्राप्त होती है, उतनी किसी अन्य साधनसे नहीं। गुरुके उपदेशद्वारा निर्दिष्ट मार्गसे ही साधकको परमात्माके ध्यानका अभ्यास करना चाहिये और परमात्माके ध्यानका अभ्यास ही योगसिद्धिको

सीमातक पहुँचा देता है।

विशुद्ध रूपसे किसी पवित्र वस्तुमें जिधर सहसा ध्यान आकृष्ट हो जाय, उसी तत्त्वका निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन करते रहना चाहिये, इसके बाद जीव धीरे-धीरे शिवत्वको प्राप्त करने लगता है और अन्तमें वह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हो जाता है तथा उसे किसी आलम्बनकी आवश्यकता नहीं पड़ती, साथ ही उसे दिव्य आनन्दकी प्राप्ति भी हो जाती है—

तत्र ध्याने तु संलग्ने हरावात्मनि वा पुनः ।

ध्यानं योजयते योगी तं निरालम्बतां नयेत् ॥

(परा० १२।३०४)

योग-साधक सर्वप्रथम नाभिमण्डलके अन्तर्गत सुदीप्त, प्रभापूर्ण, निर्मल सूर्यके प्रकाशके समान तत्त्वका तीव्र ध्यानसे चिन्तन करे। उस तेजोमण्डलके अन्तर्गत चन्द्रमाका शीतल प्रकाश और उसके अन्तर्गत अग्नि भी चन्द्रमाके शीतल प्रकाशके समान कल्याणकारिणी दीपशिखाकी भाँति स्थित है। साधक इस तेजोमय दीपशिखाके अन्तर्गत सूक्ष्म विशुद्ध ब्रह्म-तत्त्वकी निश्चयात्मक भावना करे। बिन्दुके मध्य नाद, नादके मध्य ध्वनि, ध्वनिके मध्य ओंकारकी स्थिति है और ओंकारके अन्तर्गत सूर्यकी स्थिति है, उस सूर्यमण्डलके अन्तर्गत शुद्ध ब्रह्म स्थित है और उसीमें समस्त प्राणियोंकी स्थिति है, यही ध्यानयोगका मुख्य क्रम है।

अन्तमें समस्त योगशास्त्रोंके सारतत्त्वको निरूपित करते हुए पराशरजी कहते हैं कि बहुत अधिक कहनेसे क्या लाभ ? जिस पवित्र, निर्मल एवं आकर्षक तत्त्वमें योगीका चित्त लगता हो, उसीका निरन्तर एकाग्र ध्यानके द्वारा चिन्तन करते जाय, उसीसे साधकको समस्त सिद्धियाँ, परमज्ञान, पराशान्ति तथा मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है, अतः ध्यान ही योगशास्त्रका सार-सर्वस्व है, इससे साक्षात् हरि उसके हृदयमें निवास करने लगते हैं—

‘एकमेवाभ्यसेत् तत्त्वं येन चित्ते वसेद्भरिः ।’

(पर० १२।३४९)

(६) लघुहारीतस्मृतिमें योग

स्मृतिकारोंमें महर्षि हारीतका विशिष्ट स्थान है। प्रायः सभी निबन्धकारोंने इनके वचनोंको बड़े आदरसे उद्धृत किया है। इनके द्वारा रचित वृद्धहारीतस्मृति या वृद्धहारीतसंहिता बहुत बड़ी है, जिसमें प्रायः ३५०० के आस-पास श्लोक हैं। इस दृष्टिसे यह सभी स्मृतियोंसे विशाल है। वैष्णवोंके आचार आदि सिद्धान्तोंका इसमें विस्तारसे प्रतिपादन किया गया है। महर्षि हारीतद्वारा रचित ‘लघुहारीतस्मृति’ में भी संक्षेपमें योगपर पूर्ण प्रकाश डाला गया है, वृद्धहारीतमें विशेषरूपसे मन्त्रयोगके सभी अङ्गोंपर विचार किया गया है। यहाँ प्रथम लघुहारीत तथा फिर वृद्धहारीतके योग-प्रकरणोंका संक्षेपमें निदर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है।

लघुहारीतमें वर्णाश्रमधर्मोंके प्रतिपादनके अनन्तर अन्तिम सातवें अध्यायमें सभी वर्णाश्रम-धर्मियोंके लिये कल्याणकारी योगपर प्रकाश डाला गया है। महर्षिका कथन है कि अत्यल्प योगाभ्याससे भी पूर्वजन्मके सभी पातकोंका विनाश हो जाता है, जो कि दुष्कर प्रायश्चित्तोंसे भी सम्भव नहीं। साधकको सर्वप्रथम प्राणायामके सहारे वाणीके संयममें तथा प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको वश करनेमें सहायता मिलती है। पुनः धारणाके अभ्याससे दुर्धर्ष एवं अजेय मन भी सरलतापूर्वक वशमें हो जाता है और एक ही स्थानपर केन्द्रित होने लगता है। धारणाके द्वारा एकाग्र वृत्ति और एकाग्र मनके द्वारा सम्पूर्ण जगत्के आधारभूत निर्मल अतिसूक्ष्म परमात्मतत्त्वका ध्यान होने लगता है।

परमात्माका रूप शुद्ध प्रतप्त स्वर्णके समान निर्मल एवं

अति दीप्तिमान् है और वही शुद्ध आत्मा है। जो अपने शरीरके अन्तर्गत तथा बाह्य विश्वमें भी व्याप्त है। इस प्रकार जो सभी प्राणियों तथा योगीके हृदयमें स्थित है वह एक ही परमात्मा है। उस परमात्माके ध्यानसे साधकका तथा सम्पूर्ण विश्वका भी कल्याण हो जाता है। जबतक उस तत्त्वकी प्राप्ति न हो जाय, तबतक निरन्तर उसके ध्यानका अभ्यास करते रहना चाहिये। जैसे पक्षी एक पंखके सहारे आकाशमें नहीं उड़ सकता, उसे उड़ानेके लिये दोनों पंखोंका सहारा लेना पड़ता है, उसी प्रकार योगाभ्यासमें योग-क्रियाके द्वारा विशेष ज्ञानकी प्राप्ति और उसी ज्ञानके आश्रयसे पुनः योगमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। ऐसा साधक उत्तरोत्तर अभ्यास-क्रमसे शाश्वत ब्रह्मकी प्राप्ति कर लेता है—

उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।

(हारीत० ७।१०-११)

इस प्रकार योगी सर्वथा विजितेन्द्रिय, वैराग्यवान् और शान्त हो जाता है तथा इन्हींके आश्रयसे वह विष्णुके परमपदको प्राप्त कर लेता है, यह योगका अब्दुत चमत्कार है।

(७) वृद्धहारीतस्मृतिमें योग

आचार्य हारीतने इस स्मृतिमें यद्यपि सदाचार, वैष्णवोंके संस्कार, भगवान्के आराधनके प्रकार तथा राजनीतिधर्म आदिका समावेश किया है तथापि इसमें मन्त्रयोगका विशेष ध्यानके साथ प्रतिपादन हुआ है। यद्यपि यह मन्त्रयोग पाञ्चरात्र-संहिताओं, नृसिंहपूर्वतापनी, रामपूर्वतापनी तथा गोपालपूर्व-तापनी आदि उपनिषदोंमें विस्तारसे प्रतिपादित है तथापि इस स्मृतिमें भी विशेष प्रभावशाली ढंगसे साङ्गोपाङ्ग विवेचित है। यहाँ अन्य देवताओं तथा अवतारोंके मन्त्रयोगकी चर्चा न कर संक्षेपमें भगवान् नृसिंहके उपासनाविषयक मन्त्रयोगका उल्लेख किया जा रहा है। आचार्य हारीतका यह नृसिंहोपासना-प्रकरण नृसिंहपूर्वतापनी-उपनिषद्, नृसिंहपुराण, ब्रह्मपुराण, प्रपञ्चसार तथा शारदातिलक आदि ग्रन्थोंसे अब्दुत साम्य रखता है और मूलमन्त्रमें भी कोई अन्तर नहीं दीखता। भगवान् नृसिंहका मूलमन्त्र इस प्रकार है—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्योर्मृत्युं नमाम्यहम् ॥

इस स्मृतिमें भगवान् नृसिंहके अनेक रमणीय ध्यान भी दिये गये हैं। नृसिंहकी उपासना सिद्धि प्रदान करनेमें सबसे प्रथम और शीघ्रतर बतायी गयी है। मन्त्रयोगकी सिद्धिमें मुख्यरूपसे इष्टदेवका मन्त्र-जप, मन्त्रोंको न्यासद्वारा शरीरमें उपन्यस्त करना, मन्त्रमय विग्रह मानना, विविध कामनाओंसे अथवा निष्काम भावसे तत्तत्स्वरूपोंका ध्यान, जप, चरित्र-पाठ, हवन, पूजन, दशाङ्ग-उपासनाएँ तथा इष्टदेवके चरित्रोंका श्रवण-मनन करना, साथ ही कवच, पटल तथा पद्धतियाँ आदि सहायक होते हैं। इस प्रकार मन्त्रयोग भी भगवान्की प्राप्तिमें पूर्ण सहायक होता है और भगवान्का साक्षात्कार करनेके कारण उनकी उपलब्धिका भी कारण बन जाता है।

(८) शङ्खस्मृतिमें योग

महर्षि शङ्ख महान् योगी थे और इनकी ही कृपासे इनके भाई लिखितके कटे हुए हाथ बाहुदा नदीमें स्नान करनेसे पुनः यथावत् प्रकट हो गये थे। यह इनकी सिद्ध योगविद्याका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन्होंने अपनी स्मृतिके संन्यास-प्रकरणमें योगकी सारभूत बातोंका संग्रह किया है। इनका कथन है कि संन्यासीका जीवन योगसाधनाके बिना निष्प्रयोजनीय हो जाता है, योगसे ही उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और उसकी प्रत्येक क्रिया योगचर्यासे ही सम्बन्धित रहती है। यह विशेष बात है कि जिस साधकके हृदयमें जन्मसे ही अर्थात् बाल्यकालसे ही वैराग्य हो, मोक्षकी ही तीव्र इच्छा हो, वही संन्यास लेकर योगसाधनाद्वारा मुक्त हो जाता है। प्रायः साधक क्रम-क्रमसे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ आदि आश्रमोंके आश्रयणसे अथवा अत्यन्त तीव्र वैराग्य होनेपर एवं संसारकी निस्सारता समझमें आ जानेपर सीधे ब्रह्मचर्यसे ही योगका आश्रयण लेकर संन्यास-आश्रममें प्रविष्ट हो सकता है।

प्रायः सभी स्मृतिकारोंने प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान—इन चारोंको योगसार-सर्वस्व माना है। इस विषयमें आचार्य शङ्खका कहना है कि प्राणायामसे शरीरके सभी रोग और काम-क्रोधादि दोष, धारणासे सभी पाप, प्रत्याहारके अभ्याससे अन्योक्त संसर्गसे प्राप्त होनेवाले सभी दोष-पाप नष्ट हो जाते हैं तथा ध्यानके द्वारा जीव-भावमें रहनेवाले सारे दोष नष्ट होकर ईश्वरत्वके लक्षण प्रकट होने लगते हैं—

प्राणायामैर्देहोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।

प्रत्याहारैरसत्सङ्गान् ध्यानेनानैश्वरान् गुणान् ॥

(शङ्ख ७।१२)

महर्षि शङ्खके अनुसार मनुष्यके शरीरमें ही सभी देवता प्रतिष्ठित होते हैं, जो ध्यानके दाढ्यसे प्रतिबिम्बित होते दीखते हैं और उस ध्यानकी अधिक तीव्रतासे सभीके साथ योगीका एकीभाव सम्पन्न हो जाता है तथा वह सम्पूर्ण विश्वमें आत्मा तथा परमात्माको प्रत्यक्ष देखने लग जाता है। यह अन्तर्दृष्टि ही अन्तिम सिद्धि है और यही मोक्षका उपाय है।

(९) शाण्डिल्यस्मृतिमें योग

योगर्षियोंमें महर्षि शाण्डिल्यका नाम प्रसिद्ध है। इनका 'शाण्डिल्यभक्तिसूत्र' नामक ग्रन्थ भी भक्तिसाहित्यमें अत्यन्त प्रतिष्ठित माना गया है। शाण्डिल्यस्मृतिमें भी प्रायः उसी प्रकारकी बातें निर्दिष्ट हैं। मुख्यतः महर्षि शाण्डिल्य भक्तियोगके प्रमुख आचार्य हैं। वैष्णवोंने इन्हें अपना आदर्श माना है। इनकी दिनचर्या प्रायः इज्या, आचार, अभिगमन, उपादान और योगचर्या—इन पाँच धर्मश्रेणियोंमें विभक्त है। योगचर्याके लिये आचार्यने रात्रिका ही काल विशेष उपयुक्त माना है, क्योंकि दिनमें इज्या, आचार, अभिगमन तथा उपादान आदि उपासनाविषयक मुख्य धर्म सम्पादित होते हैं, जो भगवान्के कैङ्कर्य या वरिवस्यामें पर्यवसित हो जाते हैं।

योग-विधानका प्रारम्भ करते हुए महर्षि कहते हैं कि साधक जब प्रायः एक घड़ी दिन शेष बचे तो शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर पवित्र वस्त्र धारण करे और भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर, नक्षत्रोंके पूर्ण उदित हो जानेपर गायत्रीका जप करे और एकाग्र मनसे ब्रह्मतत्त्वका ध्यान करता रहे। साधकको चाहिये कि नीचे कुशोंको फैलाकर उसके ऊपर मृगचर्म तथा उसके ऊपर कोमल, पवित्र वस्त्र बिछाकर आसन लगाकर बैठ जाय, गन्ध-पुष्पादि उपचारोंद्वारा भगवान्का अर्चनकर इस भक्तियोगचर्याका बड़ी श्रद्धा एवं एकाग्रतासे नित्य पालन करता जाय। इसी प्रकार प्रातःकाल भी नित्य-क्रियाओंसे निवृत्त होकर विविध उपचारों एवं साष्टाङ्ग प्रणिपात आदिके द्वारा अपने इष्टदेवका समाराधन करना चाहिये। जो इसमें समर्थ न हो उसे अभिगमनपूर्वक भगवद्विग्रहके अर्चन-स्तवन, चरित्र-श्रवण आदिमें सम्मिलित होकर श्रद्धापूर्वक दर्शन करना चाहिये। इसी प्रकार आचार्यने बताया है कि अष्टयामपर्यन्त

योगचर्यापूर्वक भगवद्‌ध्यान करते रहना चाहिये और जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्तिमें भी भगवान्‌की विस्मृति नहीं होने देनी चाहिये। इनके अनुसार आत्मसमर्पण, शरणागति या प्रपत्ति

और श्रद्धापूर्वक ध्यान ही मुख्य योग है। इससे भी भगवान्‌की पूर्ण प्रसन्नता और जीवनकी कृतकृत्यता हो जाती है। इसे ही अन्य शास्त्रोंमें भक्तियोग कहा गया है। (समाप्त)

योगसे योगातक

(श्रीरामचन्द्रजी शर्मा, शास्त्री)

भारत प्राचीन कालसे ही योग-विद्याका स्रोत रहा है। यहाँके परम तपस्वी महात्मा मनीषियोंने इस विद्याका प्रकाश मानवकल्याणके लिये ही किया। वेदों एवं उपनिषदोंमें योगका वर्णन मिलता है। पातञ्जलयोगदर्शनमें औपनिषद योगका विस्तृत रूप उपलब्ध होता है। मन्वादि स्मृतियोंमें भी योगकी महत्ता स्वीकार की गयी है। रामायण और महाभारतमें योगके अङ्ग—यम-नियम-प्राणायाम आदिका उल्लेख है। श्रीमद्भगवद्गीतामें तो योगकी सुन्दर प्रतिष्ठा ही की गयी है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं योगेश्वर हैं और अर्जुनको भी उन्होंने योगी बन जानेको कहा है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

(६।४६)

श्रीमद्भागवतमहापुराणमें भक्तियोग, सांख्ययोग एवं अष्टाङ्ग-योग-साधनाका विस्तृत उल्लेख हुआ है। माता देवहूतिसे कपिलमुनि कहते हैं कि शास्त्रानुसार स्वधर्माचरण, शास्त्रविरुद्ध आचरणका त्याग, प्रारब्धानुसार जो प्राप्त है उसीमें संतुष्ट रहना, विषयोंसे विरति, सत्य, अस्तेय, असंग्रह, ब्रह्मचर्यपालन, वाणीका संयम, आसनोंका अभ्यास और प्राणायामके द्वारा श्वासको जीतना, इन्द्रियोंको मनके द्वारा विषयोंसे हटाकर अपने हृदयमें ले जाना—ये योगके मुख्य सोपान हैं। भगवान्‌की लीलाओंका चिन्तन करते हुए, भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करते हुए उन्हींमें लीन हो जाना ही परम शान्ति है। ध्यानकी अन्तिम परिणति समाधिमें होती है और समाधिकी अवस्थामें तत्त्वका पूर्ण एवं सूक्ष्म ज्ञान होता है।

जीवनके महत्तम लक्ष्योंकी सिद्धिमें केवल मानव-शरीर ही सक्षम है। मोक्ष-प्राप्तिकी कामना भी मनुष्य ही कर सकता है। योगके बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। ऐसा कहा जाता

है—‘यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे’ अर्थात् जिन तत्त्वोंसे ब्रह्माण्डका निर्माण हुआ है, उन्हींसे हमारा शरीर भी बना है अर्थात् जो हमारे भीतर है, वही विराट्-रूप संसारमें है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि आत्मतत्त्वको जान लेनेपर समस्त सृष्टि एवं परमात्मतत्त्वका भी सूक्ष्म और पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

परमात्मतत्त्वके साक्षात्कारमें सहायक योगके आठ अङ्ग हैं, इनमें पाँच बहिरङ्ग और तीन अन्तरङ्ग साधन हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार—ये पाँच बहिरङ्ग बताये गये हैं, शेष तीन धारणा, ध्यान एवं समाधि विवेकख्यातिमें साक्षात् सहायक होनेसे अन्तरङ्ग-साधन माने गये हैं। प्रत्याहार दोनोंका मध्यस्थ है। यम-नियमके अभ्यासद्वारा साधक योगसाधनका अधिकारी बनता है, योगमें उसका प्रवेश हो जाता है। आसनके द्वारा शरीरको स्थैर्य प्राप्त होता है और प्राणोंको स्थिर करनेकी कलाको प्राणायाम कहते हैं। प्रत्याहारके द्वारा साधक अपनी समस्त इन्द्रियोंकी बहिर्मुखता हटाकर उन्हें अन्तर्मुखी बनाता है। इस साधनके द्वारा साधक अन्तर्जगत्में प्रवेश कर जाता है। अन्तर्जगत्में पहुँचकर वहाँ स्थिर रहनेको धारणा कहते हैं। इस धारणाके अनन्तर बहिर्जगत् एवं अन्तर्जगत्के द्रष्टा परमात्माके सगुण अथवा निर्गुण-रूपके ध्यान करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। उस अवस्थामें ध्याता, ध्यान, ध्येय सब एकरूप दृष्टिगत होते हैं। अन्तिम अवस्थामें ध्याता, ध्यान एवं ध्येयकी त्रिपुटीका भी जब विलय हो जाता है और ध्याता ध्यानमें मिलकर दोनों ध्येयमें लय हो जाते हैं, तब उसी वृत्तिनिरोधकी अन्तिम अवस्थाको निर्बीजसमाधि कहते हैं।

योगसे परमकल्याणकी प्राप्ति होती है, इसमें कभी कोई संदेह नहीं रहा। यही कारण है कि योगकी महत्ता सभी कालोंमें और प्रायः हिन्दू, जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई, पारसी, सूफी, वैष्णवादि सभी धर्मों एवं सम्प्रदायोंमें स्वीकार की गयी

है। योगसाधनासे अनेक प्रकारके लौकिक एवं पारलौकिक लाभ साधकको अनायास प्राप्त हो जाते हैं। आयुर्वेदादि शास्त्रोंमें प्राकृतिक चिकित्सा, आहार-विहारके समुचित पालन एवं आसन तथा प्राणायामादिके अभ्याससे अनेक विषम रोगोंकी शान्तिके उपाय बतलाये गये हैं। पाश्चात्य विद्वानोंने भी इस विषयमें अनेक अनुसंधान किये हैं। प्राणशक्तिके प्रयोगसे स्पर्शद्वारा ही दूसरेका रोग शान्त हो सकता है। प्रोफेसर आर० ई० डटनका कथन है कि सूक्ष्म यौगिक शक्ति अपने ही भीतर रहती है। इसका प्रभाव जब चलने लगता है तो अँगुलियोंके अग्रभागमें स्फुरण होने लगता है। इसके बलसे किसीका रोग शान्त करना हो तो एक हाथ रोगके स्थानपर तथा दूसरा दूसरी ओर रखकर सूक्ष्म शक्तिके प्रवाहको इच्छाशक्तिके द्वारा भीतर प्रवेश कराना होता है। इस प्रकार योगशक्तिके बलसे रोग शान्त किया जा सकता है।

पाश्चात्य जगत्में भी योग-साधनाकी महत्ता स्वीकार की गयी है। किंतु उन लोगोंने योगक्रियाओंकी आन्तरिक साधना एवं अभ्यासपर विशेष ध्यान न देकर इसके बाह्य पक्षको ही

विशेष महत्त्व दिया है। फल तो इसका भी है ही। आत्मिक उन्नति भले ही कम हो, किंतु उससे शारीरिक लाभ तो होता ही है। स्वस्थ शरीर रखना भी अच्छा ही है।

इस प्रकार योगका प्रचार स्वास्थ्यलाभके लिये बढ़ा और आज यह 'योगा' बन गया। योगा बनकर अंग्रेजी माध्यमसे यहाँ आया। नगरोंमें स्थान-स्थानपर पार्कोंमें योगाकी कक्षाएँ लगने लगीं और इसका प्रशिक्षण प्रायः अंग्रेजी माध्यमसे होने लगा। दूरदर्शनपर हिन्दी माध्यमसे योगासन भी आरम्भ हुए। स्कूलोंमें भी योगाकी कक्षाएँ लगने लगीं। किंतु योगशास्त्रके प्रथम सूत्र 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' का भी सम्भवतः इनमें पालन नहीं होता। पुरुष-महिलाएँ साथ-साथ ही व्यायामोंका अभ्यास करते हैं। इन्द्रिय-निग्रह अथवा चित्तवृत्ति-निरोधका साधन तो यह नहीं हो सकता। यह योगा तो गद्दोंपर जूते-जुराब-कपड़े सब पहने हुए ही हो रहा है जबकि यौगिक साधना शुद्ध, सात्त्विक एवं पवित्र आसन, स्थान आदिमें ही सम्पन्न करनी चाहिये। इस योगासे आध्यात्मिक लाभ कितना होता होगा, विज्ञ पाठक सहज ही इसका अनुमान लगा सकते हैं।

योगाभ्यास और यौगिक चिकित्सा

(श्रीमहेशकुमारजी मिश्र)

योग-साधना और निरन्तर योगाभ्याससे शरीर सर्वथा स्वस्थ, नीरोग एवं सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो जाता है तथा मोक्ष प्राप्त करनेके भी योग्य बन जाता है। इसी बातको आयुर्वेद-शास्त्रके मुख्य ग्रन्थ चरकसंहितामें इस प्रकार कहा गया है—

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।

मोक्षो निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥

(शारीरस्थान १।४४)

सभी प्रकारकी वेदनाओंको भवताप या त्रिताप (दैहिक, दैविक और भौतिक) कहते हैं। संसारके सभी मनुष्य भव-तापसे परितप्त हैं। इससे बचनेकी परम ओषधि 'योग' ही है—'भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम्' (अष्टाङ्गहृदय)।

योग नामक परम ओषधि मन और काया—इन दोनोंको प्रभावित करती है, काया तो नीरोग हो जाती है साथ ही सभी इन्द्रियाँ भी नियन्त्रित हो जाती हैं। योगारूढ़ व्यक्तिके शरीर

और मन विकाररहित होकर आत्मलीन होनेके मार्गपर प्रवृत्त हो जाते हैं। मनकी ऐसी निर्विकार समाधिकी स्थिति कई प्रकारके योगोंको पृथक्-पृथक् या एक साथ धारण करनेसे प्राप्त होती है। यह महायोग हठ, लय, मन्त्र और राजयोगके नामसे विख्यात है।

योग पहले तो शारीरिक विकारोंको दूर करता है, फिर मानसिक दुर्वृत्तियोंसे निवृत्ति दिलाता है। इसके बाद ही साधक धारणा, ध्यान और समाधिकी स्थिति प्राप्त करनेके योग्य होता है। योगमें मन और शरीरको परस्पर संश्लिष्ट ही माना गया है। मन व्यथित होनेके कारण शरीरमें भी रोग उत्पन्न होने लगते हैं और शरीरके रोगग्रस्त हो जानेपर मन भी व्यथित हो जाता है।

अन्य चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रायः रोगग्रस्त अङ्गका ही निदान करती हैं, परंतु योगविद्यामें मनुष्यको विभाजित अङ्गोंमें नहीं देखा जाता, बल्कि एकरूप देखकर सम्पूर्ण शरीरकी

चिकित्सा की जाती है।

योग-चिकित्साके मुख्य साधनोंमें षट्कर्म, यौगिक सूक्ष्म व्यायाम, आसन, मुद्राएँ, बन्ध, प्राणायाम तथा ध्यान आदि परिगणित हैं। इसके साथ ही सात्विक आहार-विहार तथा पथ्य-भोजनका भी अपना अलग महत्त्व है। धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक तथा कपालभाति—ये षट्कर्मके नामसे जाने जाते हैं। इन कर्मोंके साथ गजकरणी और शङ्खप्रक्षालन-क्रिया भी अति उत्तम है। इन क्रियाओंसे शरीरका शोधन तथा शरीरमें एकत्र मल-पदार्थोंका निःसर्ग होता है। शरीर पवित्र और शुद्ध हो जाता है। ये षट्कर्म आयुर्वेदके पञ्चकर्मसे मिलते-जुलते नाडी-शोधक कर्म हैं। गजकरणी (कुंजल) क्रियासे पेटके सभी रोग जैसे गैस, अपच, एसीडिटी, अल्सर, अरुचि आदि रोग ठीक हो जाते हैं।

नेति-कर्मके कई अवान्तर भेद हैं—जल-नेति, सूत्र-नेति, घृत-नेति आदि। नेतिके बारेमें चरणदास लिखते हैं—

नाक, कान अरु दाँत ही, रोग न ब्यापै कोय।

उज्ज्वल होवे नैन ही, नित नेती करि सोय॥

जल-नेति करनेसे अर्धकपाली या पूरे सिरका पुराना दर्द, कफ-विकार, मुखपर दाग और मुँहासे, झाँई, सफेद बाल, बाल झड़ना आदि रोग दूर हो जाते हैं। गजकरणी-क्रियामें जल-नेति अवश्य करनी चाहिये। नाकमें घाव या नकसीर हो तो योग-चिकित्सककी देख-रेखमें ही नेति-कर्म करे, अन्यथा नहीं।

धौति-कर्म श्वास और दमे तथा कुष्ठ-रोगमें लाभदायक है। इस क्रियासे शरीर शुद्ध होता है और पित्त-कफ-सम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं। गलेमें टॉनसिल पका हो, फेफड़ा रोगग्रस्त हो, हृदय दुर्बल हो, आमाशयमें व्रण हो तो यह क्रिया अनुभवी योग-चिकित्सककी सलाहपर उसकी देख-रेखमें ही करे, अन्यथा हानिकी सम्भावना है।

नौलि-कर्म तीन प्रकारके हैं। मध्यम नौलि, वाम नौलि और दक्षिण नौलि। मूलबन्ध और उड्डियानबन्धपर अभ्यास हो जानेके उपरान्त ही नौलि-क्रिया योग्य गुरुसे सीखे और करे। जिसके पेटमें व्रण या घाव हो, पुरानी पेचिश हो, हृदय और फेफड़े रोगग्रस्त हों तो वह यह क्रिया योग-चिकित्सकके निर्देशनमें करे अथवा न करे। नौलि-क्रियाके सम्यक्

सम्पादनसे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, मनकी शुद्धि होती है, वात, पित्त, कफके विकारोंका नाश होता है।

नौलि-कर्मपर पूर्ण अभ्यास हो जानेके उपरान्त ही वस्ति-कर्म करना चाहिये। इसे विधिपूर्वक गुरुसे सीखना चाहिये। वस्ति-कर्मसे बड़ी आँत और मलाशयकी सफाई तथा शुद्धि होती है। इसको करनेसे पुरानी पेचिश, कब्ज, बड़ी आँतके वायु-विकार, बवासीर तथा आँत बढ़नेके रोगोंमें लाभ मिलता है।

आमाशय, छोटी आँत, बड़ी आँत और मलाशयकी एक साथ शुद्धि करनेके लिये शङ्खप्रक्षालन-क्रिया अत्यन्त लाभदायक है। इस क्रियामें लवणमिश्रित गुनगुना पानी पीकर भुजङ्गासन, शलभासन, कोणासन, मयूरासन आदि कई प्रकारके आसन करनेका विधान है, जिससे पिया हुआ जल आमाशयसे चलकर मलाशयतकके सभी प्रकारके मलोंके साथ मलद्वारसे बाहर निकल जाय। यह क्रिया अनुभवी योग-चिकित्सकसे ही सीखकर करे, अपने आप न करे।

त्राटक-क्रियासे नेत्रोंकी शक्ति बढ़ती है। नेत्र-विकार दूर होते हैं। आँखोंमें सम्मोहनशक्ति आती है। नेत्र-गोलककी स्थिर अवस्थाकी स्थिति प्राप्त होनेपर बाह्य और अन्तर्ध्यान शीघ्र सिद्ध होने लगता है।

षट्कर्म करनेके बाद आसनका अभ्यास करना चाहिये। आसनकी परिभाषा 'स्थिरसुखमासनम्' कही गयी है, जिस स्थितिमें शरीर और मनमें एकता कायम हो जाय, शरीर सुखका और मन शान्तिका अनुभव करने लगे, वह स्थिति आसन है। आसन करते समय प्रयत्नकी शिथिलता होनी चाहिये — 'प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्।' किसी प्रकारकी जोर-जबरदस्ती या झटका देकर जल्दी-जल्दी आसन नहीं करना चाहिये। आसनकी स्थितिमें मनःकायिक द्वन्द्व भी न हों, 'ततो द्वन्द्वानभिघातः।' इसके अलावा बाह्य द्वन्द्व, जैसे—सर्दी-गर्मी, शोर-गुल, शीतल-ऊँस, दूषित वायु, अँधेरा आदि भी न हों। आसन सदैव पवित्र, शान्त और खुले स्थानमें करे। आसनकी स्थितिमें मन्त्रजप अथवा नामजप तथा अपने इष्टदेवका ध्यान शरीरके चक्रों, भ्रूमध्य, नासाग्र, शीर्षस्थान आदिमें किया जाता है। ध्यानके बिन्दु अलग-अलग आसनमें अलग-अलग हैं।

इस लेखमें केवल योगाभ्यासका चिकित्सा-क्षेत्रमें उपयोगपर ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसलिये योगशास्त्रोंका दृष्टान्त देकर आसन करनेसे रोगोपचार होनेकी बात आयी है।

पद्मासन और भद्रासन प्रायः सभी व्याधियोंको दूर करनेमें सहायक होते हैं। पश्चिमोत्तानासन पेटका मुटापा कम करता है, जठराग्नि प्रदीप्त करता है। मयूरासन जठराग्नि प्रदीप्त करता है, विषतकको भी पचा सकता है, वायु-वेगोंको संयमित करता है, हाथ, पैर, जंघा, सीना और गर्दनको नीरोग एवं हृष्ट-पुष्ट करता है। यह आसन सभी प्रकारके रोगोंको दूर करता है। पेटमें व्रण, घाव, एपेन्डिक्स, हार्निया हो तो मयूरासन न करे। मत्स्येन्द्रासन जठराग्निको प्रदीप्त करता है। यह प्रचण्ड रोगोंको काटनेका महान् शस्त्र है और डायबिटीज तथा अन्य गुर्देकी बीमारियोंमें लाभप्रद है। पेटमें व्रण, घाव, सूजन, पथरी होनेपर इसे न करे।

विपरीतकरणी—शीर्षासन, वृक्षासन, सर्वाङ्गासन करनेसे मनुष्य जल्दी वृद्ध नहीं होता। आँख, कान, नाक, गले, नेत्र, फेफड़ों, हृदय, सिर तथा पेटके रोगोंमें ये आसन लाभप्रद हैं। इनके अभ्याससे बालोंका सफेद होना तथा असमयमें गिरना भी रुक जाता है।

जब कभी आसन करते-करते श्रमका अनुभव हो, उच्च

रक्तचाप हो तो श्वासन अवश्य करे, इसको करनेसे मन और शरीर शान्त होता है।

आसनके बाद प्राणायाम करनेका प्रावधान है। जिस प्रकार अग्निमें तपायी हुई धातुओंकी मैल जल जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम करनेसे इन्द्रियोंके दोष नष्ट हो जाते हैं—

दहन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।

तथेन्द्रियाणां दहन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

(मनु० ५।७१)

प्रारम्भमें पूरक और रेचक ही करे। अच्छा अभ्यास हो जानेके बाद ही कुम्भकका अभ्यास करना उचित होता है। कपालभाति, भस्त्रिका प्रारम्भके अच्छे प्राणायाम हैं, बादमें सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतली, सीत्कारी आदि प्राणायाम किसी योग्य गुरुसे सीखकर करने चाहिये। आसन-प्राणायामके सिद्ध होनेके बाद ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। ध्यानसे चित्त प्रसन्न और शान्त हो जाता है तथा सभी मनोविकार दूर हो जाते हैं।

शरीर एवं मनके सर्वथा मलरहित एवं दोषरहित हो जानेपर साधककी सर्वत्र सम्यक् दृष्टि सम्पन्न होने लगती है। इससे वह भगवत्साक्षात्कारकी योग्यता प्राप्त कर लेता है और सम्यक् भगवद्दर्शन हो जानेपर उसका जीवन सर्वथा कृतकृत्य हो जाता है।

स्वर-विज्ञान और बिना औषध रोगनाशके उपाय

(परिव्राजकाचार्य परमहंस श्रीमत्त्वामी श्रीनिगमानन्दजी सरस्वती)

[विशेषाङ्क पृ० ३४८ से आगे]

वर्षफलका निर्णय

चैत्रमासकी शुक्ल प्रतिपदा तिथिको प्रातःकाल अर्थात् चान्द्रवर्षके शुरू होनेके समय तथा दक्षिणायन और उत्तरायणके प्रारम्भमें विचक्षण व्यक्तियोंको तत्त्वसाधनके भेदाभेदका निरूपण और निरीक्षण करना चाहिये। यदि उस समय चन्द्रनाडी (वाम नासिकासे श्वास) चलती हो और पृथ्वीतत्त्व, जलतत्त्व या वायुतत्त्वका उदय हुआ हो तो समझना चाहिये कि वसुमती सब प्रकारके शस्त्रसे पूर्ण होगी और देशमें सुकाल होगा। और यदि अग्नितत्त्व या आकाशतत्त्वका उदय हुआ हो तो समझना चाहिये कि पृथ्वीपर भीषण भय और घोर

दुर्भिक्ष उपस्थित होगा। उक्त समय यदि सुषुम्ना नाडीसे श्वास प्रवाहित होता हो तो सब कार्य नष्ट होंगे, पृथ्वीपर राज्यक्रान्ति, महारोग और पीड़ा-यन्त्रणादि उपस्थित होंगे।

मेष-संक्रमणके दिन अर्थात् महाविषुव-संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल यदि पृथ्वीतत्त्वका उदय हो तो अतिवृष्टि, राज्यवृद्धि, सुभिक्ष, सुख-सौभाग्यकी वृद्धि होगी और पृथ्वी धान्यपूर्ण होगी। जलतत्त्वका उदय होनेपर भी वही फल होगा। यदि अग्नितत्त्वका उदय हो तो दुर्भिक्ष, राष्ट्रविप्लव, अल्पवृष्टि तथा कठिन रोगोंकी उत्पत्ति होगी। वायुतत्त्वका उदय होनेपर उत्पात, उपद्रव, भय, अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि होगी और

आकाशतत्त्वका उदय होनेपर मनुष्यको उद्गार, संताप, ज्वर और भय होगा तथा पृथ्वीकी शस्यहानि होगी।

पूर्णे प्रवेशने श्वासे स्वस्वतत्त्वेन सिद्धिदः।

(स्वरोदयशास्त्र)

मेष-संक्रान्तिके समय जब जिस ओरकी नासिका वायुसे पूर्ण हो अथवा निःश्वास वायु प्रवेश करता हो, उसी समय यदि उसी नासिकामें निर्दिष्ट मतानुसार तत्त्वोंका उदय होता हो तो समझना चाहिये कि उस वर्षका फल शुभ होगा, अन्यथा अशुभ होगा।

यात्रा-प्रकरण

किसी कार्यवश जब किसी स्थानकी यात्रा करनेकी आवश्यकता हो तब जिस ओरकी नाकसे श्वास चलता हो, उसी ओरका पैर पहले बढ़ाकर यात्रा करनी चाहिये, इससे शुभ फल प्राप्त होता है।

वामाचारप्रवाहेन न गच्छेत् पूर्व उत्तरे।

दक्षनाडीप्रवाहे तु न गच्छेद् याम्यपश्चिमे ॥

(पवनविजयस्वरोदय)

जब बायीं नासिकासे श्वास चलता हो, तब पूर्व और उत्तरकी ओर नहीं जाना चाहिये और जब दाहिनी नाकसे श्वास चलता हो, तब दक्षिण और पश्चिमकी ओर यात्रा नहीं करनी चाहिये। उन-उन दिशाओंमें उस-उस समय यात्रा करनेसे महाविघ्न उपस्थित होता है, यहाँतक कि यात्रा करनेवालेके पुनः घर लौटनेकी सम्भावनातक भी नहीं रहती।

यदि सम्पत्-कार्यके लिये यात्रा करनी हो तो इडा नाडी (वाम नासिकासे श्वास) चलनेके समय गमन करनेसे शुभ फल प्राप्त होता है। और यदि किसी विषम अर्थात् क्रूर कर्मका साधन करनेके लिये जानेकी आवश्यकता हो तो जिस समय पिंगला नाडी चलती हो, उस समय यात्रा करनेसे सिद्धि प्राप्त होगी। चतुर व्यक्ति शुक्र और शनिवारको किसी स्थानमें जाते समय जमीनपर सात बार, और दूसरे किसी दिन यात्रा करते समय ग्यारह बार पृथ्वीपर पैर पटककर यात्रा करते हैं, परंतु बृहस्पतिके दिन किसी कामसे घरसे बाहर निकलनेके समय आधा ही पैर पृथ्वीपर पटककर यात्रा करनेसे वाञ्छित फल प्राप्त होता है। किसी कामसे यदि शीघ्र गमन करनेकी आवश्यकता हो तो चाहे शुभ कार्य हो, चाहे शत्रुके साथ

कलह हो, चाहे किसी प्रकारकी क्षतिका निवारण करना हो, यात्रा करनेके लिये तत्काल जिस ओरकी नासिकासे निःश्वास चलता हो, उसी ओरके अङ्गपर हाथ रखना चाहिये और फिर उसी ओरका पैर आगे बढ़ाकर उस समय यदि चन्द्रनाडी चलती हो तो चार बार और सूर्यनाडी चलती हो तो पाँच बार जमीनपर पैर पटककर गमन करना चाहिये। इस नियमसे यात्रा करनेपर उसके साथ किसीका भी कलह नहीं होता और न उसकी कोई हानि होती है, यहाँतक कि उसके पैरमें एक काँटातक नहीं गड़ता। वह व्यक्ति सब प्रकारकी आपत्ति-विपत्तिसे रहित होकर सुख, स्वच्छन्दता और शान्तिके साथ घर वापस आ जाता है—इस शिववाक्यमें कोई संदेह नहीं।

कोई-कोई स्वरतत्त्ववित् पण्डित कहते हैं कि दूर देशकी यात्रा करनेके लिये चन्द्रनाडी ही मङ्गलजनक है और समीपके स्थानमें गमन करनेके लिये सूर्यनाडी कल्याणप्रद है। सूर्यनाडी—दाहिनी नाकमें श्वास प्रवेश करते समय यदि यात्रा की जा सके तो शीघ्र ही कार्य सिद्ध होता है—

आक्रम्य प्राणपवनं समारोहेत वाहनम्।

समुत्तरेत् पदं दत्त्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ॥

(स्वरोदयशास्त्र)

किसी प्रकारकी सवारीपर चढ़कर किसी कार्यके लिये गमन करते समय प्राणवायुको खींचकर यात्रा करनी चाहिये, उस समय जो नासिका चलती हो, उसी ओरका पग पहले बढ़ाकर सवारीपर चढ़ना चाहिये, ऐसा करनेसे कार्य-सिद्धि होती है। किंतु वायु, अग्नि, आकाशतत्त्वका उदय होनेपर गमन नहीं करना चाहिये।

गर्भाधान

ऋतुसे चौथे दिनसे लेकर सोलहवें दिनतक गर्भधारणका समय है। ऋतुस्नाता स्त्रीको सूर्य-चन्द्रके संयोगकालमें पृथ्वीतत्त्व या जलतत्त्व उदय होनेपर शङ्खवल्ली और गोदुग्ध पान कर स्वामीके वाम पार्श्वमें शयन कर स्वामीसे पुत्रकी कामना प्रकट करनी चाहिये। सूर्यनाडी और चन्द्रनाडीको एकत्र कर गर्भाधान करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है। सूर्य-चन्द्रका संयोग करके अर्थात् रात्रिके समय जब पुरुषकी सूर्यनाडी चलती हो और उसी समय यदि स्त्रीकी चन्द्रनाडी चलती हो, तब उस समय गर्भाधान करना चाहिये।

विषमाङ्के दिवारात्रौ विषमाङ्के दिनाधिपः ।
चन्द्रनेत्राग्रितत्त्वेषु वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥

(स्वरोदयशास्त्र)

जिस समय सुषुम्नानाडी चलती हो अथवा सूर्यनाडी चलती हो और उसी समय यदि अग्रितत्त्वका उदय हो तो उस समय ऋतुरक्षा होनेपर वन्ध्या नारी भी पुत्रवती होती है। जिस समय सुषुम्नानाडी दाहिनी नासिकासे प्रवाहित हो, उस समय गर्भाधान होनेसे पुत्र उत्पन्न होता है, परंतु वह हीनाङ्ग और कृश होता है। स्त्री-पुरुषके यदि एक ही नाकसे श्वास चलता हो तो गर्भ नहीं रहता। जलतत्त्व उदय होनेके समय गर्भाधान करनेसे, उस गर्भसे जो संतान उत्पन्न होती है वह धनी, सुखी और भोगी होती है और उसकी कीर्ति दिग्दिगन्तमें फैलती है। पृथ्वीतत्त्वका उदय होनेपर गर्भ रहनेपर संतान अति धनी, सुखी और सौभाग्यशाली होती है। पृथ्वीतत्त्वके उदयकालमें गर्भ रहनेसे पुत्र और जलतत्त्वके उदयकालमें गर्भ रहनेसे कन्या पैदा होती है। अग्नि, वायु और आकाशतत्त्वके उदयकालमें गर्भ रहनेपर गर्भपात हो जाता है अथवा उस गर्भसे संतान पैदा होते ही मर जाती है।

कार्यसिद्धिकरण

यदि किसी कार्यकी सिद्धिके लिये किसीके पास जाना हो तो जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उसी ओरका पैर पहले आगे बढ़ाकर जाना चाहिये। परंतु वायु, अग्नि अथवा आकाशतत्त्वका उदय होनेपर यात्रा नहीं करनी चाहिये। उसके बाद गन्तव्य स्थानपर पहुँचनेपर जिस नासिकासे श्वास चलता हो उसी ओर उस आदमीको जिससे काम होनेवाला हो, रखकर बातचीत करनी चाहिये। ऐसा करनेसे कार्य अवश्य सिद्ध होता है। नौकरीकी उम्मेदवारीके लिये यदि जाना हो तो इस नियमसे यात्रा करनेसे मनोरथ पूर्ण होता है।

मुकद्दमा आदिके कार्यमें इस नियमके अनुसार न्यायाधीशके पास जाकर इजहार आदि देनेसे मुकदमेमें अवश्य जीत होती है। अपने मालिक या उच्चपदस्थ कर्मचारीसे यदि कोई बातचीत करनेकी आवश्यकता हो तो उस समय जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उसी ओर उसे रखकर बातचीत करनी चाहिये, ऐसा करनेसे उनका प्रियपात्र बना जा सकता है। नौकरीपेशा आदमियोंके लिये यह कम

सुभीतेकी बात नहीं है। ऐसे लोगोंको इस बातपर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

जिस ओरकी नासिकासे श्वास चलता हो, उसी ओरका आश्रय करके जो काम किया जाता है वह सिद्ध होता है। परंतु शत्रु-वशीकरणके कार्यमें इसके विपरीत कार्य करना चाहिये। अर्थात् जो नासिका चलती हो, उसके विपरीत पार्श्वमें शत्रुको रखकर बातचीत करनी चाहिये। ऐसा करनेसे घोर शत्रु भी तुम्हारे अनुकूल कार्य करेगा—

उभयोः कुम्भकं कृत्वा मुखे श्वासो निपीयते ।

निश्चला च यदा नाडी घोरशत्रुवशं कुरु ॥

(पवनविजयस्वरोदय)

कुम्भक करके मुखद्वारा निःश्वास-वायु पीना चाहिये। ऐसा करते-करते जब निःश्वास-वायु स्थिर हो जाय, तब शत्रुका ध्यान करना चाहिये। इस तरह धीरे-धीरे घोर शत्रु भी वशमें हो जाता है। चन्द्रनाडी चलते समय बायीं ओर, सूर्यनाडी चलते समय दाहिनी ओर और सुषुम्ना चलते समय बीचमें रखकर कार्य करनेसे विवादमें जीत होती है—

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदन्तः प्राणमेव च ।

आकृष्य गच्छेत् कर्णान्तं जयत्येव पुरन्दरम् ॥

(योगस्वरोदय)

जिस नाडीमें वायु चलती हो, उसमें स्थित प्राणवायुको कानतक खींचकर जिस ओरकी नासिकासे वायु चलती हो, उसी ओरका चरण आगे बढ़ाकर गमन करनेसे शत्रुपर विजय प्राप्त होती है।

अग्नि बुझानेका कौशल

आग लगनेसे न मालूम कितने लोगोंका सर्वस्व स्वाहा हो जाता है। निम्नलिखित उपायसे बहुत आसानीसे और आश्चर्यजनक रीतिसे अग्नि बुझायी जा सकती है।

अग्नि लगनेपर जिस ओर उसकी गति हो, उस दिशामें खड़ा होकर, जिस नासिकासे निःश्वास चलता हो उस नासिकासे वायु खींचकर नासिकाद्वारा जल पीना चाहिये। एक छोटी लुटियामें चाहे जिससे जल मँगाकर यह कार्य किया जा सकता है। उसके बाद सात रती जल—

उत्तरस्यां च दिग्भागे मारीचो नाम राक्षसः ।

तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हुतो वह्निः स्तम्भ स्वाहा ॥

—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके अग्रिमें डाल देना चाहिये। यह कार्य न करनेपर भी केवल उपर्युक्त उपायसे ही बड़ा लाभ होता है। बहुत बार प्रयोग करके इसका आश्चर्यजनक प्रभाव हमने देखा है और अनेकोंकी धन-सम्पत्तिकी रक्षा हुई है।

रक्त शुद्ध करनेका कौशल

नियमपूर्वक नित्य 'शीतली' कुम्भक करनेसे कुछ दिनोंमें शरीरका रक्त शुद्ध और शरीर ज्योतिर्युक्त हो जाता है। 'शीतली' कुम्भकका नियम इस प्रकार है—

जिह्वा वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः ।

क्षणं च कुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत् पुनः ॥

(गोरक्षसंहिता)

जिह्वाद्वारा वायुको खींचना चाहिये, अर्थात् दोनों होठोंको सिकोड़कर बाहरकी हवा धीरे-धीरे खींचनी चाहिये। इस प्रकार अपने दमभर हवा खींचकर मुँह बंद करके लार निगलनेकी तरह हवाको उदरमें भरना चाहिये, फिर क्षणभर उस वायुको कुम्भकद्वारा धारणकर दोनों नाकोंसे उसे निकाल देना चाहिये। इस रीतिसे बार-बार वायु खींचनेसे कुछ दिनमें

रक्त साफ और शरीर कामदेवके समान कान्तिपूर्ण हो जाता है। 'शीतली' कुम्भक करनेसे अजीर्ण तथा कफ-पित्तादि रोग पैदा नहीं होते। चर्मरोग आदिमें रक्तशुद्धिके लिये सालसाका व्यवहार न कर उसके बदले इस क्रियाको करके देखें, सालसाकी अपेक्षा शीघ्र और स्थायी सुफल प्राप्त होता है।

नित्य रात-दिनमें कम-से-कम तीन-चार बार पाँच-सात मिनट स्थिर-भावसे बैठकर इस प्रकार मुँहसे वायु खींचना और नासिकाद्वारा निकालना चाहिये। यह क्रिया जितनी अधिक की जायगी उतना ही शीघ्र लाभ होगा, इसमें संदेह नहीं।

मैले, कूड़ा-करकटसे भरे, दूषित वायुसे पूर्ण स्थानमें, वृक्षके नीचे, मिट्टीके तेलका चिराग जहाँ जलता हो ऐसे घरमें और जब भोजन पचा न हो तब यह क्रिया नहीं करनी चाहिये। इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि वायुरेचनके बाद हाँफना न पड़े। विशुद्ध वायुपूर्ण स्थानमें स्थिरासनसे बैठकर धीरे-धीरे रेचक और पूरकका कार्य करना चाहिये।

इस प्रक्रियासे कठिन शूल-वेदना तथा छाती, पेट आदिकी कोई भी भीतरी वेदना अवश्य ही दूर हो जाती है।

(क्रमशः)

भगवत्प्राप्तिमें ध्यानयोगकी महिमा

[विशेषाङ्क पृ० ३९४ से आगे]

श्रीसीतारामका ध्यान

कालाम्बोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासितं

मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि ।

सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं

पश्यन्तीं मुकुटाङ्गादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥

(शारदातिलक १५।८४)

श्रीरामकी देहकान्ति मेघके समान श्याम वर्ण है, उनके मस्तकपर रत्नमुकुट है और बाजूबंद आदि विविध रत्नमण्डित आभूषणोंसे शरीर प्रकाशित हो रहा है, वे बड़े ही कोमलाङ्ग हैं और वीरासनसे बैठे हुए हैं, उनके एक हाथमें ज्ञानमुद्रा है और दूसरा हाथ जानुपर टिका हुआ है, उनके वाम-पार्श्वमें विद्युत्की भाँति कान्तियुक्त तथा भगवान् रामको देखती हुई पद्महस्ता सीता विराजित हैं। ऐसे भगवती सीतासहित भगवान् श्रीरामका हम ध्यान करते हैं।

श्रीरामके बालरूपका ध्यान

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंधीरा ॥

अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ॥

कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहि देखा ॥

भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हिय हरि नख अति सोभा रूरी ॥

उर मनहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा ॥

कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई ॥

दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे ॥

सुंदर श्रवन सुचारु कपोल। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ॥

नील कमल दोउ नयन बिसाल। बिकट भृकुटिलटकनि बर माला ॥

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ॥

पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ॥

(श्रीरामचरितमानस)

श्रीराम-लक्ष्मणके किशोररूपका ध्यान

पीत बसन परिकर कटि भाथा । चारु चाप सर सोहत हाथा ॥
तन अनुहरत सुचंदन खोरी । स्यामल गौर मनोहर जोरी ॥
केहरि कंधर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नागमनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन । बदन मयंक तापत्रय मोचन ॥
कानन्हि कनक फूल छबि देहीं । चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी । तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥
रुचिर चौतर्नी सुभग सिर मेचक कुंचित केस ।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस ॥

(श्रीरामचरितमानस)

जनकपुरकी फुलवारीमें श्रीराम-लक्ष्मणका ध्यान^१

सोभा सीवैं सुभग दोउ बीरा । नील पीत जलजाभ सरीरा ॥
मोर पंख सिर सोहत नीके । गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ॥
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए । श्रवन सुभग भूषन छबि छाए ॥
बिकट भृकुटि कच घँघरवारे । नव सरोज लोचन रतनारे ॥
चारु चिबुक नासिका कपोला । हास बिलास लेत मनु मोला ॥
मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं । जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥
उर मनि माल कंबु कल गीवा । काम कलभ कर भुज बलसीवा ॥
सुमन समेत बाम कर दोना । साँवर कुँवर सखी सुठि लोना ॥
केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान ।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान ॥

(श्रीरामचरितमानस)

श्रीकृष्णके शिशुरूपका ध्यान

किलकत कान्ह घुटुरुअनि आवत ।

मनिमय कनक नंदके आँगन मुख प्रतिबिम्ब पकरिबेहि धावत ॥
कबहूँ निरखि आप छहींको करसों पकरन चाहत ।
किलकि हँसत राजत द्वै दँतुली पुनि पुनि तेहि अवगाहत ॥
कनकभूमिपर कर-पग-छाया यह उपमा इक राजत ।
कर कर प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा कमल बैठकी साजत ॥

बालदसा सुभ निरखि जसोदा पुनि पुनि नंद बुलावत ।
अंचरातर लै बाँकि सूखे प्रभुको दूध पियावत ॥
(श्रीसूरदासजी)

बालगोपाल श्रीकृष्णका ध्यान

अव्याद्व्याकोषनीलाम्बुजरुचिररुणाश्वोजनेत्रोऽम्बुजस्थो
बालो जङ्घाकटीरस्थलकलितरणत्किङ्किणीको मुकुन्दः ।
दोर्ध्या हैयङ्गवीनं दधदतिविमलं पायसं विश्ववन्द्यो
गोगोपीगोपवीतो रुरुनखविलसत्कण्ठभूषश्चिरं वः ॥

जिसकी देहकान्ति विकसित नीलकमलके समान है,
जिसके रक्तकमलके समान नयनयुगल हैं, जो पद्मपर विराजित
है, जिसके चरणोंमें नूपुर और कटिमें किकिणी बज रही है,
जिसके एक हाथमें मक्खन और दूसरेमें खीर है, जिसके
कण्ठमें बाघके नख शोभित हैं ऐसा जगद्वन्द्य बालरूपी
गोपाल जो गौ, गोपी और गोपोंसे घिरा है, भक्तोंकी रक्षा करे ।

वन-भोजनमें श्रीकृष्णका ध्यान

भगवान् श्रीकृष्ण अपने साथी बालकोंको हँसाते-हँसाते
उनके साथ वनमें भोजन कर रहे हैं—

बिभ्रद्रेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे

वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।

तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः

स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।११)

—कमरमें बँधे हुए वस्त्रमें बाँसुरीको खोंसे, बायीं
बगलमें सींग और दाहिनी बगलमें बेंत दबाये, बायें हाथमें
माखन-भातका ग्रास लिये और अंगुलियोंकी संधियोंमें
खेलनेकी गोलियाँ दबाये श्यामसुन्दर अपने सखा बालकोंके
बीच कर्णिकाकी भाँति स्थित हुए उनसे हास-परिहास करके
स्वयं हँसते और उन्हें हँसाते हुए भोग लगा रहे हैं । इस
लीलाको स्वर्गके देवता बड़े ही आश्चर्यके साथ देख रहे हैं ।

१-श्रीरामचरितमानसमें भगवान्के बालरूप, किशोररूप, जनकपुरीमें धनुष-यज्ञके समय, वनवास-यात्रामें सीताराम-लक्ष्मणका ध्यान, वरवेशमें ध्यान, सुबेलपर्वतपर ध्यान, पुष्पक-विमानमें, वानरादिके साथ भगवान् सीतारामका ध्यान, सिंहासनासीन सीतारामका ध्यान तथा स्वायम्भुव-मनु-शतरूपाके सामने स्थित ध्यान आदि बड़े उपयोगी हैं और गीतावली तो भगवान्के बाललीलासे लेकर सिंहासनारूढ भगवान् सीतारामके आद्योपान्त ध्यानके निमित्त ही रचित दीखती है । पाठकोंको अपनी रुचिके अनुसार जिधर विशेष आकर्षण प्रतीत हो, उसीके नियमित ध्यानका विशेष अभ्यास करना चाहिये ।

विश्व-विमोहन श्रीकृष्णका ध्यान

अंसालम्बितवामकुण्डलधरं मन्दोन्नतभूलतं
 किञ्चित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचिप्रसारीक्षणम् ।
 आलोलाङ्गुलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा
 मूले कल्पतरोस्त्रिभङ्गललितं ध्यायेज्जगन्मोहनम् ॥

जो कश्चेतक लटकते हुए मनोहर कुण्डल धारण किये हैं, जिनकी भूलता धनुषकी भाँति खिंची हुई है, जिनके अधरपल्लव अति कोमल, सुन्दर और किञ्चित् कुञ्चित हैं, जिनके नेत्र बाँके और विशाल हैं और जो कल्पतरु (या कदम्ब) के नीचे मनहरण त्रिभङ्गरूपसे खड़े आनन्दके साथ चञ्चल कोमल अँगुलियोंको वंशीके छिद्रोंपर फिराते हुए उसे बजा रहे हैं, ऐसे जगन्मोहन मनमोहन श्यामसुन्दरका ध्यान करना चाहिये ।

गोविन्द श्रीकृष्णका ध्यान

फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियं
 श्रीवत्साङ्गमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
 गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंघावृतं
 गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥

प्रफुल्ल इन्दीवरके समान जिनकी देहकी कान्ति है, चन्द्रमाके समान जिनका शोभामय मुखमण्डल है, जो मस्तकपर मयूरपुच्छका मुकुट धारण किये हैं, जिनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न तथा गलेमें कौस्तुभमणि है, जो पीतपट पहने हैं, जिनका दिव्यतनु गोपियोंके नयनोत्पलद्वारा अर्चित है, जो गौ और गोपोंके समूहसे घिरे हैं तथा हाथमें वंशी लेकर उसे बजा रहे हैं, जिनका समस्त दिव्य शरीर दिव्य अलङ्कारोंसे विभूषित है, हम ऐसे श्रीकृष्णको भजते हैं ।

मुरलीमनोहर श्रीकृष्णका ध्यान

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
 बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
 रन्धान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दै-
 वृन्दारण्यं स्वपदमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥

(श्रीमद्भागवत १०।१२१।५)

काम, क्रोध, मद और लोभ जबतक मनमें बसे हैं, तबतक पण्डित और मूर्ख दोनों ही एक समान हैं ।

भगवान् श्रीकृष्णकी वंशी-ध्वनि सुनते ही गोपबालाएँ ध्यानस्थ हो गयीं, उन्होंने देखा—मोरकी पाँखोंका मुकुट पहने, कानोंमें कनेरके फूल धारण किये, स्वर्णके समान सुन्दर पीतपट और वैजयन्ती मालासे सुशोभित गोपगणोंके द्वारा गायी जाती हुई अपनी कीर्तिको सुनते हुए उनके साथ श्यामसुन्दर नटवरवेषमें अपने चरणोंकी विहारभूमि वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं, आप बाँसुरीमें अपने अधरकी सुधा भरते हुए उसके छिद्रोंपर अँगुली धरकर विविध स्वर निकाल रहे हैं ।

व्रजनवयुवराज श्रीकृष्णका ध्यान

मुदिरमदमुदारं मर्दयन्नङ्गकान्त्या
 वसनरुचिनिरस्ताम्भोजकिञ्जल्कशोभः ।
 तरुणिमतरणीक्षाविक्रवद्बाल्यचन्द्रो
 व्रजनवयुवराजः काङ्क्षितं मे कृषीष्ट ॥

(स्तवपुष्पाञ्जलि)

जो अपनी अङ्गशोभाके द्वारा नवीन मेघका मदगर्व खर्व कर रहे हैं, जो अपने वस्त्रकी कान्तिद्वारा किञ्जल्कशोभाका तिरस्कार कर रहे हैं और जिनके नवयौवनरूपी सूर्यके दर्शनसे बाल्यावस्थारूपी चन्द्रमाकी कान्ति क्षीण हो रही है, वे व्रजनवयुवराज श्रीकृष्ण हमारी आकाङ्क्षा पूर्ण करें ।

वृन्दावनविहारी श्रीराधाकृष्णका ध्यान

अङ्गश्यामलिमच्छटाभिरभितो मन्दीकृतेन्दीवरं
 जाड्यं जागुडरोचिषां विदधतं पट्टाम्बरस्य श्रिया ।
 वृन्दारण्यविलासिनं हृदि लसद्दामाभिरामोदरं
 राधास्कन्धनिवेशितोज्ज्वलभुजं ध्यायेम दामोदरम् ॥

(स्तवपुष्पाञ्जलि)

जिनके श्रीअङ्गकी श्यामकान्तिके द्वारा इन्दीवरकी कान्ति क्षीण हो गयी है, जिनके पीतपटकी शोभासे कुंकुमकी कान्ति तिरस्कृत हो गयी है, जिनके हृदयपर विराजमान वैजयन्ती-मालासे शरीरका मध्यभाग सुशोभित हो रहा है, जो श्रीराधिकाजीके कन्धेपर अपना बायाँ हाथ रखे हुए हैं, मैं उन वृन्दावनविहारी श्रीदामोदरका ध्यान करता हूँ ।

(क्रमशः)

—गो० तुलसीदासजी

योगाचार्य और उनकी योगचर्या—

परमयोगगुरु श्रीमारुति

श्रीहनुमान्जी जन्मजात योगी हैं। वे अञ्जनीदेवीके गर्भसे प्रकट होते ही सूर्यमण्डलतक पहुँच गये थे। यह उनकी आकाश-गमनकी अद्भुत सहजात सिद्धि थी। इसी प्रकार उनमें अणिमा, महिमा आदि सभी सिद्धियाँ अपने उत्कृष्ट रूपमें व्याप्त हैं। वे अपनी कृपादृष्टिसे साधक या उपासकको इन शक्तियों या सिद्धियोंसे तत्काल संयुक्त कर देते हैं—

अष्ट सिद्धि नव निधिके दाता। अस बर दीन्ह जानकी माता ॥

—भगवती श्रीसीताजीने स्वयं उनकी भक्ति-भावनासे प्रसन्न होकर उन्हें ऐसा वरदान दिया था। इसी प्रकार जब समुद्र पार करते समय सुरसा उन्हें निगलने चली तो वे प्रायः सौ योजन आकारवाले हो गये थे। यह उनकी महिमा नामकी शक्ति थी। लंका-दहनके समयमें भी उनका रूप तो अत्यन्त विशाल था, पर वे इतने हल्के थे कि शीघ्रतापूर्वक एक गृहसे दूसरे गृहतक पहुँच जाते थे। गोस्वामीजीने स्पष्ट लिखा है—
देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ॥

इस प्रकरणमें महिमा और लघिमा दोनों ही सिद्धियोंका उत्कृष्टतम रूप परिलक्षित होता है। सीता-अन्वेषणके लिये जब वे लंकामें प्रवेश करने लगे तो उन्होंने अपना रूप 'मसक'-जैसा बना लिया था—

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिर नरहरी ॥

इससे उनकी अणिमा-सिद्धि-विषयक निपुणता स्पष्ट होती है। बालीके भयसे व्याकुल सुग्रीव जब श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर अत्यधिक शंकित हो जाते हैं तो उनका परिचय जाननेके लिये श्रीहनुमान्जीको भेजते हैं। वे उस समय अपना वानरका शरीर छोड़कर सर्वथा एक विद्वान् ब्राह्मणका रूप धारण कर लेते हैं—

बिप्र रूप धरि कपि तहैं गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ ॥

इसमें उनकी यथाकामावसायिता नामकी सिद्धि दृष्ट होती है। इसी तरह लंका-विजयके उपरान्त भगवान् श्रीरामका संदेश लेकर भरतजीके पास पहुँचनेके समय भी वे ब्राह्मणका रूप धारण कर लेते हैं—

राम बिरह सागर महैं भरत मगन मन होत।

बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत ॥

इस घटनामें उनकी प्राकाम्य नामकी सिद्धि दृष्टिगोचर गुणोंके निधान भी हैं।

होती है। इसमें इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर लेना और कहीं भी पहुँच जाना सम्भव होता है। इन सभी तथ्योंको एकत्र कर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने 'हनुमानचालीसा' में भी उनके अनेक रूप धारण करने और अपने भक्तोंको समस्त सिद्धियाँ प्रदान करनेकी बात एक साथ ही कही है—

जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा। होय सिद्ध साखी गौरीसा ॥

अर्थात् इस 'हनुमानचालीसा'के नित्य पठन-मात्रसे भक्तजन सिद्ध हो जाते हैं। उन्हें सभी सिद्धियाँ सुगमतासे प्राप्त हो जाती हैं। ऐसा मैं भगवान् श्रीशिवका साक्षी देकर कहता हूँ।

योगिराज श्रीमारुति सम्पूर्ण योगियों, ऋषियों एवं भक्तोंके परम गुरु हैं। इस विषयमें अनेक सुन्दर आख्यान प्राप्त होते हैं। अथर्ववेदीय श्रीरामोपनिषद्के अनुसार एक बार सनकादि योगीन्द्रों, अन्य ऋषियों एवं प्रह्लाद आदि श्रेष्ठ विष्णुभक्तोंने श्रीहनुमान्जीसे पूछा—'श्रेष्ठ वायुपुत्र ! आप यह बतलायें कि सभी वेदों, पुराणों, स्मृतियों, शास्त्रों एवं अन्यान्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थोंमें ब्रह्मवादियोंके लिये कौन-सा तत्त्व उपदिष्ट हुआ है ? श्रीहनुमान्जीने उत्तर दिया—इन सबमें परमतत्त्व ब्रह्मस्वरूप तारक ही है। राम ही परम ब्रह्म हैं। राम ही परम तपःस्वरूप हैं। राम ही परमतत्त्व हैं। श्रीराम ही तारक ब्रह्म हैं। इसी प्रकार गणेश, सरस्वती, दुर्गा, क्षेत्रपाल, सूर्य, चन्द्र, नारायण, नरसिंह, वासुदेव, वाराह तथा अन्य भी दूसरे सभी देवताओंके मन्त्रोंको तथा श्रीसीताजी, लक्ष्मणजी, भरतजी, हनुमान्, शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, अंगद और जाम्बवान्—इन सबको श्रीरामका ही अङ्ग जानना चाहिये।

इस प्रसंगमें श्रीहनुमान्जीने अध्यात्म-विषयक अन्य जिज्ञासाओंका भी सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया है जो साधकोंके लिये परमोपयोगी है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने उन्हें 'महायोगी'के अतिरिक्त ज्ञानियोंमें भी सर्वोत्तमी कहा है—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं

दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।

सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं

रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥

इसके अतिरिक्त वे योगविद्याके फलप्रसूत अन्य समस्त

गुणोंके निधान भी हैं।

योगिराट् महर्षि याज्ञवल्क्य

महामुनि वैशम्पायनजी वेदोंके आचार्य थे। उनके यहाँ बहुत-से छात्र वेदाध्ययन करते थे। याज्ञवल्क्यजी भी इनके ही समीप पढ़ते थे। याज्ञवल्क्यजी इनकी बहनके लड़के थे और मिथिलापुरीमें रहते थे। एक बार समस्त ऋषियोंने मिलकर मेरुके समीप एक सभा स्थापित की। उस सभामें यह नियम था कि निश्चित तिथिको जो ऋषि उस सभामें उपस्थित न होगा, उसे सात दिनतक वाचिक ब्रह्महत्याका पातक लगेगा। इस नियमके अनुसार सब ऋषि वहाँ उपस्थित होते थे। एक बार उसी तिथिको वैशम्पायनजीके पिताका श्राद्ध था, उन्होंने सोचा—‘श्राद्ध तो आवश्यक है, इसका प्रायश्चित्त सब विद्यार्थी मिलकर कर लेंगे।’ तदनुसार वे सभामें नहीं गये। नियमानुसार उन्हें वाचिक ब्रह्महत्याका पाप लगा। उन्होंने अपने समस्त विद्यार्थियोंसे कहा—‘तुम सब मिलकर इस अपराधका प्रायश्चित्त कर लो।’ याज्ञवल्क्यजीने कहा—‘अभी ये सब छात्र छोटे हैं, ये सब क्या प्रायश्चित्त करेंगे? सबके बदलेका मैं ही कर लूँगा।’ वैशम्पायनजीने बहुत कहा—‘नहीं, सबको मिलकर ही करना चाहिये।’ किंतु याज्ञवल्क्यजी हठ पकड़ गये कि नहीं, मैं अकेला ही करूँगा। तब गुरुको कुछ क्रोध आया और उन्होंने कहा—‘तू बड़ा अभिमानी है, अतः मेरे द्वारा पढ़ी हुई यजुर्वेदकी शाखाको उगल दे।’ गुरुकी आज्ञा पाकर याज्ञवल्क्यजीने अन्नरूपमें वे सब ऋचाएँ उगल दीं। उन्हें उनके शिष्योंने तित्तिर (तीतर) बनकर ग्रहण कर लिया, वही यजुर्वेदमें कृष्णयजुःके नामसे प्रसिद्ध शाखा हुई। इसीसे कृष्णयजुः और शुक्लयजुः—ये दो भेद हुए। उस शाखाके पढ़नेवाले ब्राह्मण तैत्तिरीय कहलाये।

पुनः महर्षि याज्ञवल्क्यजीने भगवान् सूर्यकी आराधनाकर उनका साक्षात्कार किया और उनसे माध्यन्दिनसंहिता प्राप्त की। यही माध्यन्दिनसंहिता ही शुक्लयजुर्वेदसंहिता या वाजसनेयिसंहिता भी कहलाती है। इसीसे सम्बन्धित वाजसनेयि या शतपथ ब्राह्मण भी इन्हें ध्यानयोगसे प्राप्त हुआ, जो शुक्लयजुर्वेदसंहिताका ब्राह्मण (ग्रन्थ) है। बृहदारण्यक आदि उपनिषदोंमें कहोढ़ आदि ब्राह्मणों तथा मैत्रेयी एवं भरद्वाज-कन्या कात्यायनी नामकी दो पलियोंके साथ इनके

ब्रह्मज्ञान-सम्बन्धी संवादोंका विशद वर्णन है। ब्रह्म-वादिनी गागीकि साथ इनका जो शास्त्रार्थ हुआ वह बड़ा ही महत्वपूर्ण है।

भगवान् याज्ञवल्क्यजी ब्रह्मज्ञानी एवं योगनिष्ठ थे। योगैकप्राण, महाप्राण विदेह जनकजीने इन्हें अपना गुरु बनाया। इसीसे इनकी योगचर्याका अनुमान लगाया जा सकता है। इनके द्वारा विरचित याज्ञवल्क्यस्मृति अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, यह अनेकों संस्कृत टीकाओं तथा अनेक देशी-विदेशी भाषाओंद्वारा व्याख्यात है। इस स्मृति-ग्रन्थके वानप्रस्थ तथा संन्यास-प्रकरणोंमें योगचर्याका विस्तृत वर्णन है। प्रारम्भमें ही उन्होंने ‘इज्याचारदमाहिसादानं स्वाध्यायकर्म च’ इस प्रकारसे धर्मका लक्षण बतलाते हुए योगमार्गिके द्वारा परमात्माके साक्षात्कारको परमधर्म माना है और इसे ही सब धर्मोंका प्राण कहा है—

अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥

(याज्ञ० १।८)

योगाभ्यासके द्वारा भगवान्का साक्षात्कार करना यह सभी भारतीय विद्याओंका भी लक्ष्य रहा है और महर्षि याज्ञवल्क्यजीने अपनी याज्ञवल्क्यस्मृति, जिसमें वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, व्यवहार तथा प्रायश्चित्तादिका वर्णन है, उसमें भी योगकी पूर्ण प्रक्रिया बतलायी है, किंतु उनके जो दो बड़े ग्रन्थ हैं—‘योगियाज्ञवल्क्यस्मृति’ और ‘बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति’—वे तो प्रायः योगमार्गद्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार करानेमें ही संलग्न हैं। इन दोनों स्मृतियोंमें योगके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि अङ्गों तथा स्नान, संध्या, गायत्री-जप, प्रणव-जप और ओंकार आदिके ध्यानके द्वारा परमात्म-साक्षात्कार एवं सम्यक् भगवद्दर्शनकी बात विस्तारसे बतलायी गयी है और समाधिकी महत्ता भी इन्होंने सर्वत्र प्रतिपादित की है।

उपनिषदोंमें निर्दिष्ट इनका योग-वेदान्तका उपदेश भी ब्रह्मज्ञान करानेवाला है। वेदसे लेकर स्मृतितकके इनके सम्पूर्ण चरित्रोंमें उत्कृष्टतम योग और विशुद्ध ज्ञान ही सर्वत्र प्रतिभासित होता है, इससे इनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय वह कम ही है। इनकी मैत्रेयी नामक विदुषी स्त्रीने इनसे

ब्रह्मविद्या प्राप्तकर परमपद प्राप्त किया और दूसरी स्त्री विद्वत्संन्यास ग्रहण किया और योग-समाधिमें लीन रहे। इनके कात्यायनीसे चन्द्रकान्त, महामेघ तथा विजय नामक तीन पुत्र पंद्रह शिष्योंके नामोंसे शुक्लयजुर्वेदकी पंद्रह शाखाएँ हुए। महर्षिने अन्तमें गृहस्थ-जीवनका परित्यागकर प्रसिद्ध हुई।

योगिराज राजर्षि भर्तृहरि

भर्तृहरिके नामसे भारतमें संस्कृतके अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। जिनमें नीतिशतक, वैराग्यशतक, शान्तिशतक, शृंगारशतक, विज्ञानशतक, वाक्यपदीय आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। विद्वानोंके विचारसे भारतमें भर्तृहरि नामके कई योगी तथा विद्वान् हुए हैं। एक गोरखनाथजीके शिष्य योगी भर्तृहरि भी विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं। वैसे भर्तृहरिकी जीवनीपर भी भर्तृहरि-निवेद (गोकुलनाथ उपाध्यायविरचित), द्वात्रिंशत्पुत्तलिकासिंहासनम्, विक्रमार्कचरितम् आदि अनेक ग्रन्थ प्राचीन कालमें लिखे गये थे। माधव विद्यारण्यने धातुवृत्तिमें जिस श्रद्धासे भर्तृहरिका उल्लेख किया है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि सभी भर्तृहरि, जिनका ऊपर विवरण आया है, सभी एक ही थे। उन सबका समय विक्रमकी प्रथम शती ही निश्चित होती है। क्योंकि विद्यारण्य अपने पूर्ववर्ती किसी श्रद्धेय योगीके प्रति ही इतनी श्रद्धासे उनके सैकड़ों वचनोंको उद्धृत कर सकते थे। सायण और माधव दोनों ही इनके प्रति समान श्रद्धा रखते थे।

भर्तृहरिने 'वैराग्यशतक'में निर्विकल्प-समाधिकी कई बार चर्चा की है। इससे अनुमान होता है कि वे समाधि-सिद्ध योगी थे। उनकी सभी रचनाएँ बड़ी सरस हैं, विशेषकर नीति और वैराग्यशतककी उपयोगिता सर्वविदित है। भर्तृहरिके तीनों शतकोंपर प्रायः पचाससे भी अधिक प्राचीन संस्कृत टीकाएँ हैं। इनमें सबसे उत्तम रामचन्द्र बुधेन्द्रकी टीका है। हिंदी, अंग्रेजी एवं भारतकी विविध प्रांतीय भाषाओंमें प्रायः इसके शताधिक अनुवाद परिलक्षित होते हैं। बहुत पहले किसी विद्वान्ने बहुत युक्तियोंसे चाणक्यको ही भर्तृहरि सिद्ध किया था। क्योंकि इन शतकोंके कई श्लोक पञ्चतन्त्रमें भी प्राप्त होते हैं। जिसके रचयिता पं० विष्णुशर्मा हैं। परंतु चाणक्य एवं भर्तृहरिके समयमें पर्याप्त अन्तर प्रतीत होता है। सायणने

व्याकरणके प्रसंगमें कहीं चाणक्यका नाम नहीं लिया है, यद्यपि चाणक्य भी महायोगी थे। 'वैराग्यशतक' के प्रारम्भिक पद्यमें ही उन्होंने भगवान् शङ्करकी 'योगीन्द्रशिरोमणि' कहकर बड़े सुन्दर शब्दोंमें वन्दना की है। इससे सिद्ध होता है कि वे योगीश्वर शिवके ध्यानमें पूर्णतया अभ्यस्त हो चुके थे। यह पूर्ण श्लोक इस प्रकार है—

चूडोत्तंसितचारुचन्द्रकलिकाचञ्चच्छिखाभास्वरो

लीलादग्धविलोककामशलभः श्रेयो दशाग्रे स्फुरन् ।

अन्तःस्फूर्जदपारमोहतिमिरप्राग्भारमुञ्चाटयज्-

चेतः सद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः ॥

अर्थात् 'मस्तकको भूषित करनेवाली सुन्दर चन्द्रकलाकी देदीप्यमान शिखाके समान शोभायमान, कामदेवरूपी चञ्चल पतंगको अनायास ही दग्ध करनेवाले और सब प्रकारके कल्याणोंके निधान ज्ञानदीपकस्वरूप महादेव अन्तःकरणमें प्रकाशित होनेवाले, अपार मोहके प्राग्भारका विनाश करते हुए योगिराजोंके हृदय-मन्दिरमें सर्वोत्कृष्टतासे विराजमान हैं।'।

योगिराज भर्तृहरिने इसी श्लोकमें सब कुछ कह दिया है। भगवान् शिव निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपोंमें स्थित तथा अज्ञानान्धकारको ध्वस्त करनेवाले हैं। वे साक्षात् योगमूर्ति, योगेश्वर, योगिजनध्येय एवं वैराग्यरूपी निर्मल कमलको प्रफुल्लित करनेके लिये साक्षात् सूर्य हैं। वैराग्यसे ही मोहान्धकार दूर होकर विशुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। ज्ञान साक्षात् भगवान् शङ्करका ही स्वरूप है। इसी बातको विस्तारसे प्रतिपादित करनेके लिये ही उन्होंने 'वैराग्यशतक'की रचना की है। उसके प्रत्येक पदमें योग और विज्ञानके ईश्वर-साक्षात्कार करानेवाले मूल साधनाका प्रतिपादन हुआ है। साधकोंको महायोगी भर्तृहरिके उपदेशोंसे लाभ उठानेका यत्न करना चाहिये।

सत्कर्म करनेवालोंकी देवता भी सहायता करते हैं और असत्-मार्गपर चलनेवालेका साथ सगा भाई भी छोड़ देता है।

—श्रीकृष्ण मिश्र यति

ब्रह्मज्ञानी राजर्षि जनक

विदेह-राजाओंका सम्पूर्ण वंश योगपरायण रहा और महाराज निमिसे लेकर सीरध्वज जनकतक सभी राजा परम्परासे योगविद्या और ब्रह्मविद्याके ज्ञानाभ्यासमें तल्लीन रहते थे। यहाँतक कि उनके प्रभावसे सम्पूर्ण मिथिलावासी जनता भी अत्यन्त धर्मपरायण एवं योगज्ञानमें निष्ठा रखनेवाली थी।

निमिवंशमें जितने राजा हुए सभी जनक कहलाते थे, ब्रह्मज्ञानी होनेसे इन सभीकी संज्ञा भी 'विदेह' थी। कराल जनक, खाण्डिक्य जनक आदिके योग-ज्ञानकी चर्चाएँ तो महाभारत तथा विष्णुपुराण आदिमें विस्तारसे वर्णित हैं, इन सभी राजर्षियोंमें भगवती सीताके पिता सीरध्वज जनक सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। इनके दरबारमें प्रायः महर्षि याज्ञवल्क्य, महर्षि गौतम तथा महर्षि शतानन्द-जैसे ब्रह्मज्ञानी बराबर निवास करते थे और महर्षि व्यासदेव, शुकदेव, विश्वामित्र तथा अष्टावक्रादि महायोगी शास्त्रचर्चामें निरत रहते थे। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि इनके पास ज्ञानोपदेश तथा ब्रह्मज्ञान सीखने आते थे। महात्मा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि जिनके ज्ञानरूपी सूर्यके द्वारा संसाररूपी महारात्रि नष्ट हो जाती है और जिनके योगज्ञानपूर्ण वचनावलीरूप सूर्यकी किरणोंसे मुनिरूपी कमल खिल उठते थे—

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा । बचन किरन मुनि कमल बिकास ।।

(रा० च० मा० २।२७६।१)

—ऐसे उन महाराज जनकके योग और अध्यात्मज्ञानकी क्या प्रशंसा की जा सकती है। मोहकी छाया भी कभी उनके पास नहीं पहुँच पाती थी, किंतु योग-ज्ञान-वैराग्यमें इतने पारङ्गत होनेपर भी भक्तिसे वे इतने प्रभावित थे कि साक्षात् जगज्जननी लक्ष्मीस्वरूपिणी महादेवी सीताजीको उनकी पुत्री और परिपूर्णतम ब्रह्मके अवतार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको उनका जामाता बनना पड़ा। वास्तवमें राजर्षि श्रीजनकजीने अखण्ड भोग-समृद्धिके मध्य रहते हुए भी अनन्त उपरति एवं अनासक्ति-योगका जो अद्भुत आदर्श दिखाया वह सर्वथा दुर्लभ है।

इतिहास-पुराणोंमें उनकी गाथाका एक श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है—

अनन्तं बत मे वित्तं यस्य वै नास्ति किञ्चन ।

मिथिलायां प्रदग्धायां न मे दह्यति कश्चन ॥

—इस गाथा-गानकी पूरी कथा इस प्रकार है—

एक बारकी बात है, महर्षि वेदव्यासजी अनेक ऋषि-महर्षियों एवं योगिजनोंके साथ मिथिलामें चातुर्मास्य सम्पन्न कर रहे थे। वे प्रतिदिन वहाँ कुछ धर्म, ज्ञान और योगज्ञानकी चर्चा करते और सभी ऋषि-महर्षि उसे ध्यानसे सुनते। कभी-कभी ऐसा होता था कि महर्षि व्यासदेवजी महाराज जनककी ओर लक्ष्यकर और उनके विशेष अभिमुख होकर विशिष्ट ज्ञानकी कथाएँ कहते थे, जिससे यह अनुमान होता था कि महाराज जनक इस ज्ञानके विशेष अधिकारी हैं और उनमें अधिक विरक्ति एवं उपरति है। इन बातोंसे ऋषियोंके मनमें ईर्ष्या एवं द्वेष उत्पन्न होने लगा और वे सोचने लगे कि यह राजा तो गृहस्थ है, आपादमस्तक ऐश्वर्यमें निमग्न है और व्यासजी इसे ही विशेष अधिकारी मान रहे हैं तथा हम जो मात्र कौपीनधारी, परिवार आदिसे शून्य तथा सर्वथा अकिञ्चन हैं, हमारी ओर वे अभिमुख ही नहीं होते, ऐसा पक्षपात क्यों? अवश्य ही इनमें राजवैभव और सुख-समृद्धिका आकर्षण है, नहीं तो ज्ञानोपदेशके अधिकारत्वमें कहाँ यह गृहस्थ राजा और कहाँ हम वनवासी मुनिगण?

व्यासजी अपनी अन्तर्दृष्टिसे उनके मनकी बात समझ गये, परंतु कुछ बोले नहीं। एक दिन जब ज्ञान-चर्चा चल रही थी, सभी बैठकर सुन रहे थे, तब उन्होंने एकाएक अपनी योगाग्निसे विकराल अग्नि प्रकट कर दी। धीरे-धीरे वह अग्नि सब पदार्थोंको जलाने लगी, राजा जनकजीका अन्नागार, काष्ठागार, कोष, अश्वशाला, गजशाला आदि सब कुछ जलकर भस्म होने लगा। लोगोंके बुझानेपर भी वह अग्नि बुझ नहीं रही थी, अपितु और भी अधिक बढ़ती जा रही थी। राजकर्मचारी बार-बार आकर इसकी सूचना राजा जनकको देते रहे, किंतु ब्रह्मज्ञानानन्दमें वे इतने निमग्न हो रहे थे कि उन्हें इस बातका तनिक भी विक्षोभ नहीं हुआ, वे महर्षि व्यासजीका उपदेश सुनते ही रहे। वह अग्नि बढ़ते-बढ़ते उनकी ओर आने लगी। ऋषियोंने उस अग्निको जब अपने निवास-स्थलोंकी

ओर बढ़ते देखा तो वे उपदेश सुनना छोड़कर झट अपने आसन, कौपीन, कमण्डलु आदि सामग्रीको लिये और आगसे बचावके लिये धीरे-धीरे इधर-उधर जाने लगे। यह सब देखकर भगवान् व्यासने जनकसे कहा—‘तुम अग्रिको शमन करनेकी व्यवस्था क्यों नहीं करते? तुम्हें चिन्ता क्यों नहीं होती?’ इसपर राजर्षि जनकने उत्तर दिया—‘इस मिथिला नगरीके जलनेसे मेरा कुछ भी नहीं जला। मेरा वैभव तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, फिर भी मेरा कुछ भी अपना नहीं है। अतः मैं चिन्ता क्यों करूँ? तत्त्वकी बातें ही श्रोतव्य एवं ध्यातव्य हैं। आप अपना प्रवचन जारी रखें।’

इसपर भगवान्ने उस योगाग्रिको तत्काल शान्त कर दिया और देखा यह गया कि उस अग्रिसे कहीं कोई भी वस्तु जली नहीं थी। सभी कोषागार, अश्वशाला, गजशाला, राजमहल,

उद्यानोपवनादिसहित सम्पूर्ण मिथिलापुरी पूर्णतया सुरक्षित थी। फिर राजाके अनुचरोंने अग्रि-भयसे वहाँसे जानेके लिये तैयार उन योगी, ऋषि, मुनियोंसे सादर प्रार्थना कर प्रवचनमें बैठनेका अनुरोध किया। तब महर्षि व्यासजीने कहा—‘आपलोगोंके त्याग और वैराग्यकी भी परीक्षा हो गयी।’ यह राजा निश्चय ही भोगोंमें रहते हुए भी योगसिद्ध तथा संसारसे पूर्णतया उपरत है। हमलोगोंको इनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। वाचिक वैराग्यका विशेष महत्त्व नहीं है। अतः विशेष योगाभ्यास और संसारकी क्षणिकता तथा परमात्माकी नित्यताका अभ्यासपूर्वक साक्षात्कार करना चाहिये। पुनः उनका प्रवचन प्रारम्भ हो गया। महर्षिगण राजा जनककी उपरति एवं तितिक्षासे आश्चर्यचकित हो गये। महाराज जनकजीके इस प्रकारके अनेक दिव्य चरित्र शास्त्रोंमें वर्णित हैं।

सांख्य-योगके वक्ता भगवान् कपिलदेव

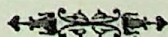
भगवान् कपिल साक्षात् विष्णुके अवतार हैं। सृष्टिके प्रारम्भिक पादमकल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें प्रजापति कर्दमके यहाँ उनकी पत्नी देवहूतिसे भगवान्ने कपिलरूपमें अवतार ग्रहण किया। अपनी माता देवहूतिको ही कपिलदेवजीने प्रथम तत्त्वज्ञान, योग एवं भक्तिका उपदेश दिया। भागवतमें भगवान् कपिलदेवजीके सांख्य-योगका तत्त्वोपदेश विस्तारसे निर्दिष्ट है। भगवान् कपिलदेवने सांख्य और योगको एकमें ही प्रतिपादित किया और पुनः अष्टाङ्गयोगका प्रतिपादन करते हुए यह भी बताया कि योगके भी अनेक भेद हैं। तात्पर्यस्वरूप यह बतलाया कि समस्त योगों और उसके यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि अङ्गों, सभी साधनाओं एवं धर्माचरणोंका लक्ष्य है एक परम-तत्त्वकी—भगवत्तत्त्वकी प्राप्ति। अतः योगीको प्रतिपद यह ध्यान रखना चाहिये कि उसकी दृष्टि भगवान्में हो। उसका एकमात्र लक्ष्य भगवत्प्राप्ति होनी चाहिये। सभी प्राणियोंमें ईश्वरकी भावना रखना, उसका समादर करना यह भगवत्साक्षात्कारका एक प्रकार है, जिसे कपिलदेवजी निर्गुण परमात्माका साक्षात्कार कहते हैं। चौबीसों अवतारों एवं शिव, गणेश आदिके विविध अवतारोंके स्वरूपोंका ध्यान, समाधि, पूजा, यन्त्र, मन्त्रद्वारा साक्षात्कारको

वे सगुण साक्षात्कार कहते हैं। साथ ही अपने हृदिस्थ ईश्वरको सांख्ययोग और वेदान्त-क्रियाओंद्वारा देख लेना, इसे भी वे परमात्म-साक्षात्कार कहते हैं। अपनी माता देवहूतिको अनेक प्रकारसे समझाते हुए वे निष्कर्षरूपमें कहते हैं—नाना प्रकारके कर्मकलाप, यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, वेदविचार (मीमांसा), मन और इन्द्रियोंके संयम, कर्मोंके त्याग, विविध अङ्गोंवाले योग, भक्तियोग, निवृत्ति और प्रवृत्तिरूप सकाम-निष्काम दोनों प्रकारके धर्म, आत्मतत्त्वके ज्ञान और दृढ़ वैराग्य—इन सभी साधनोंसे सगुण-निर्गुणरूप स्वयंप्रकाश भगवान्को ही प्राप्त किया जाता है—

क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपःस्वाध्यायमर्शनेः ।
आत्मेन्द्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥
योगेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन चैव हि ।
धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥
आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च ।
इयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणः स्वदृक् ॥

(श्रीमद्भा० ३।३२।३४—३६)

अतः मनुष्यको बड़ी सावधानीसे संसारके दुःखरूप भोगोंसे मनको हटाकर भगवान्के चरणोंमें लगाना चाहिये।



सिद्धयोगा शबरी

महामुनि मतंग पम्पासरोवरके समीप निवास करनेवाले तपस्वी-समुदायके परम गुरु एवं ब्रह्मवेत्ता थे। उनके अनेक शिष्योंमेंसे एक योगसिद्धा शबरी नामकी योगिनी भी थी। शबरीके विषयमें वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण, गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके रामचरितमानसके अतिरिक्त आनन्दरामायण, कृत्तिवासरामायण एवं विविध रामायणोंमें यथास्थान वर्णन प्राप्त होता है। शबरीने योगके सभी नियमोंका पालन करते हुए पूर्ण सिद्धावस्थाको प्राप्त कर लिया था। दिव्य शक्तिसे सम्पन्न महर्षि मतंग यह जानते थे कि निर्गुण परमात्मा त्रेतायुगमें सगुण रूप धारण करके भगवान् श्रीरामके रूपमें मानव-चरित्र करते हुए सीताजीके हरणके उपरान्त उनके आश्रममें आयेंगे। अतः जब मतंगजी स्वर्गको जाने लगे तो वे शबरीको सतर्क करके छोड़ गये कि भगवान् श्रीरामके इस आश्रमपर पधारनेकी अवधितक तुम यहीं रहो। उनका स्वागत-सत्कार करके तुम उन्हें सीताजीका पता बतला देना। शबरीने अपने गुरुके आदेशका यथावत् पालन किया।

योगिनी शबरी योगके सम्पूर्ण नियमोंका पालन करते हुए भगवान् श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षामें सदैव निरत रहती थी। सीता-अन्वेषण-कार्यमें लगे हुए भगवान् श्रीराम एक दिन अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ शबरीके आश्रमपर पधारे। जगदीश्वर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका दर्शन करते ही शबरी भाव-विभोर हो उठी। उसे अपने गुरुकी कही हुई बात याद आ गयी—

शबरी देखि राम गुहँ आए। मुनि के बचन समझि जियँ भाए ॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। शबरी परी चरन लपटाई ॥

(रा० च० मा०, अरण्यकाण्ड ३३। ६—८)

शबरी उनके पैरोंपर गिरकर लिपट गयी। उसने कन्द-मूल-फल देकर उन दोनों भाइयोंका स्वागत किया। शबरीकी सुदीर्घ तपस्या और सुदीर्घ साधनासे उत्पन्न उत्कट भक्ति-भावको देखकर भगवान् श्रीराम अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उससे बोले—

जोगि बृन्द दुर्लभ गति जोई। तो कहूँ आजु सुलभ भइ सोई ॥
अर्थात् योगजनोंको भी जो गति अत्यन्त दुर्लभ होती है, हे शबरी ! वह आज तुम्हें सरलतासे प्राप्त हो गयी है। वैसे भी—

मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा ॥
मेरा दर्शन अत्यन्त ही दुर्लभ एवं अमोघ होता है। वह कभी व्यर्थ नहीं जाता। उसे प्राप्त कर प्राणी अपने सहज स्वरूपावस्थाको प्राप्त हो जाता है। उसके सारे क्लेश समाप्त हो जाते हैं और वह निरन्तर दिव्य ज्ञानमें अवस्थित रहने लगता है। उसे जीवन्मुक्तिका आनन्द प्राप्त हो जाता है, जिसका परम फल शान्ति और ज्ञानके अखण्ड साम्राज्यकी प्राप्ति है। भक्तराज विभीषणसे भी भगवान्ने यही कहा है—

जदपि सरखा तव इच्छा नाहीं। मम दर्सन अमोघ जग माहीं ॥
सिद्धा शबरीकी योग-साधना एक-दो जन्मोंकी नहीं अपितु अनेकों जन्मोंकी थी। उसने मुनियोंसे यावज्जीवन उत्कृष्टतम ज्ञान-चर्चा सुनी थी। वैसे भी भगवान्की कृपा सभीको समान-रूपसे प्राप्त होती है। उसमें अधिकारी-अनधिकारीका कोई भेद नहीं रहता। पर स्वयं शबरीने कहा है—

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह माँ मैं मतिमंद अघारी ॥
यह शबरीके योगज्ञानजनित विनयका स्वरूप था। अतः योग-साधकोंको अहंकारका परित्याग कर सभीमें भगवान्का दर्शन करते हुए विशुद्ध एकात्मभावकी भावना करनी चाहिये। इसके अभावमें शान्ति या सुख सर्वथा असम्भव है। गीता (२। ६७) में भी कहा है—

‘न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।’

अतः योगाभ्यासीको अन्य कोई चर्चा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उसमें असत्यका अभिनिवेश होता है। जब परमात्म-भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं तो फिर किससे राग-द्वेष ? और किसकी निन्दा की जाय ? पतनके यही दो मार्ग हैं। अस्तु, इनसे ऊपर उठकर सर्वत्र परमात्माका ही दर्शन करना चाहिये।

इस संसारमें दो ही अमूल्य रत्न हैं—एक भगवान् और दूसरा संत। इन दोनोंका कोई मोल-तोल नहीं हो सकता। —दादूजी

योग, ज्ञान एवं भक्तिकी अभिन्नता

ईस्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
 सो मायाबस भयउ गोसाई । बँध्यो कीर मरकट की नाई ॥
 जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
 तब ते जीव भयउ संसारी । छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥
 श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
 जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी । ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी ॥
 अस संजोग ईस जब करई । तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ॥
 सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई ॥
 जप तप व्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥
 तेइ तून हरित चरै जब गाई । भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ॥
 नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
 परम धर्ममय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ॥
 तोष मरुत तब छाँमाँ जुड़ावै । धृति सम जावनु देइ जमावै ॥
 मुदिताँ मथै बिचार मथानी । दम आधार रजु सत्य सुबानी ॥
 तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥

जोग अग्नि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।

बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥

तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ ।

चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि ।

तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि ॥

एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय ।

जातहि जासु समीप जरहि मदादिक सलभ सब ॥

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
 आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥
 प्रबल अबिद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥
 तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा । उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥
 छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई । तब यह जीव कृतारथ होई ॥
 छोरत ग्रंथि जानि खगराया । बिघ्न अनेक करइ तब माया ॥
 रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई ॥
 कल बल छल करि जाहि समीपा । अंचल बात बुझावहि दीपा ॥
 होइ बुद्धि जौं परम सयानी । तिन्ह तन चितव न अनहित जानी ॥
 जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहि बाधी । तौ बहोरि सुर करहि उपाधी ॥
 इंद्री द्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
 आवत देखहि बिषय बयारी । ते हठि देहि कपाट उघारी ॥
 जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई । तबहि दीप बिग्यान बुझाई ॥
 ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा ॥
 इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई । बिषय भोग पर प्रीति सदाई ॥

विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ॥

तब फिर जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति कैसे।

हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ॥

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।

होइ घुनाच्छर न्याय जाँ पुनि प्रत्यूह अनेक ॥

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहि बारा ॥

जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई ॥

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद ॥

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआई ॥

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई ॥

तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ॥

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने ॥

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा ॥

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥

असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ॥

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।

अस समर्थ रघुनायकहि भजहि जीव ते धन्य ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

‘कल्याण’ नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,	५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते	श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय,
२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,		पता-नं० १५१, महात्मा गाँधी
३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—		रोड, कलकत्ता, (पश्चिम
रामदास जालान,	जो इस पत्रिकाके मालिक	बंगाल सोसाइटी पंजीयन
(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)		अधिनियम १९६१के अन्तर्गत
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,	हैं और जो इसकी पूँजीके	पंजीकृत एक सोसाइटी)।
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,		
४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,		
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,		
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,	भागीदार हैं।	

मैं रामदास जालान गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

रामदास जालान

(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)

प्रकाशक